वेदों को जानें

वेदों को जानें

डॉ. विवेक आर्य

शिशु रोग विशेषज्ञ

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

427, गली मन्दिर वाली, नया बांस, नई दिल्ली-110006

ई-मेल : aspt.india@gmail.com

दूरभाष : 43781191, 9650522778

पुस्तक : वेदों को जानें
लेखक : डॉ. विवेक आर्य
सर्वाधिकार : लेखकाधीन
संस्करण : प्रथम 2016, 2100 प्रतियाँ/पुनमुर्दित 10000 प्रतियाँ
मूल्य : 20 रुपये
वितरक : दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा
15 हनुमान रोड़, नई दिल्ली-110001
शब्द संयोजन : दीपक लेजर प्रिंट्र्स, शाहदरा, दिल्ली-110032
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, 2046 बाजार सीताराम, दिल्ली-6

Vedon Ko Jane

by: Dr. Vivek Arya

अनुक्रम

प्राक्कथन

किसी आठवीं कक्षा के विद्यार्थी से वेद और आर्यों के विषय में सामान्य से प्रश्न पूछें, वह उत्तर देगा- आर्य लोग बाहर से आये थे, वेद गड़रियों के गीत हैं, वैदिक काल में यज्ञों में पशु बलि का विधान था- आर्य लोग सोमरस का नशा करते थे, वेदों में यम-यमी के रूप में भाई-बहन का अश्लील संवाद है। नारी और शूद्र को वेद पढ़ने, सुनने का कोई अधिकार नहीं है। वेदों के विषय में 99 प्रतिशत जन सामान्य की यही मान्यता है। वेदों के सत्य सन्देश से लगभग सम्पूर्ण मानव जाति अनभिज्ञ है। इस शोचनीय अवस्था के दो प्रमुख कारण हैं। प्रथम तो वेदों के सत्य ज्ञान से जनमानस को शिक्षित करने का कोई भी विकल्प पाठ्यक्रम के माध्यम से उपलब्ध नहीं है, दूसरा वेदों के विषय में भ्रांतियों का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार हो रहा है। इसे हम मनुष्य जाति के साथ अन्याय ही कहेंगे कि आज के युग में जब विज्ञान इतनी प्रगति कर चुका है, जब टेलीविजन, इंटरनेट आदि के सशक्त माध्यम उपलब्ध हैं, उस पर भी वेदों को जनमानस तक पहुँचाने का कोई सार्थक एवं दूरगामी प्रयास प्रभावशाली स्तर पर हमें देखने को नहीं मिल रहा है।

वेदों के प्रति अश्रद्धा एवं अविश्वास के चलते न जाने कितने हिन्दू हर वर्ष नास्तिक और विधर्मी बनकर अपना जीवन सार्थक बनाने के स्थान पर व्यर्थ कर देते हैं। वे स्वयं भी अंधकारमय जीवन जीते हैं अन्यों को भी भ्रमित कर उनका जीवन भी नष्ट कर देते हैं। इस पुस्तक को लिखने का मूल उद्देश्य वेदों के विषय में निरंतर फैल रही इन्हीं भ्रांतियों का निवारण कर सत्य का प्रचार करना है, जिससे मानव जाति के मन में वेदों के प्रति न केवल श्रद्धा की वृद्धि हो अपितु वेदों के महान सन्देश का पालन कर सभी जीवन में उन्नति कर मोक्ष पथ के गामी बने।

इस पुस्तक में मैंने स्वामी दयानंद एवं उनकी वेदार्थ शैली का अनुसरण करने वाले अनेक विद्वानों के पुरुषार्थ रूपी साहित्य को सरल, पुस्तक रूप में संग्रहीत करने का प्रयास मात्र किया है। सत्य सनातन वेदों के सन्देश को एक पुस्तक में संकलित करना असंभव है, क्योंकि जैसे ईश्वर अनंत है, ऐसे ही ईश्वर का ज्ञान भी अनंत है। अभी भी इस पुस्तक में परिवर्धन एवं संशोधन की अपार संभावनाएं हैं। विद्वानों के आशीर्वाद एवं ईश्वर की अनुकम्पा से आगे के संस्करणों में वृद्धि का प्रयास किया जाता रहेगा।

इस पुस्तक के लेखन में मेरा सबसे अधिक सहयोग मेरे गुरु, मार्गदर्शक

एवं शान्तिधर्मी मासिक पत्रिका के संपादक श्री सहदेव शास्त्री जी का रहा है। उनकी प्रेरणा से मैं इस पुस्तक को अल्प काल में पूर्ण करने में सक्षम हुआ। श्री संजय आर्य जी, श्री तेजपाल आर्य जी ने समय-समय पर सहयोग देकर मुझे कृतज्ञ किया। श्री धर्मपाल आर्य जी प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा एवं श्री विनय आर्य जी ने प्रकाशन में सहयोग कर मेरे मनोरथ को सिद्ध करने में मेरा सहयोग किया, मैं उनका आभारी रहूंगा। अंत में मैं अपनी माता जी श्रीमती संगीता आर्या एवं अपनी सहधर्मिणी डॉ॰ निधि आर्या का हार्दिक आभार प्रकट करना चाहूंगा, जिन्होंने मुझे गृहस्थ कार्यों में भारमुक्त कर इस पुस्तक को लिखने का मार्ग प्रशस्त किया। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मनुष्य जाति वैदिक धर्म का पालन कर आयु, विद्या, यश और बल में अपार उन्नति करे।

25 दिसंबर 2015 स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस

डॉ॰ विवेक आर्य
शिशु रोग विशेषज्ञ, दिल्ली
E-mail : drvivekarya@yahoo.com
Blog : vedictruth.blogspot.in
Facebook Page Facebook.com/drvivekarya

1 क्या वेदों में पशुबलि, माँसाहार आदि का विधान है?

वेदों के विषय में सबसे अधिक प्रचलित भ्रम यह है कि वेदों में पशुबलि, माँसाहार आदि का विधान है।

इस भ्रान्ति के मुख्य कारण हैं- पाश्चात्य विद्वानों जैसे मैक्समुलर, ग्रिफ्फिथ आदि; मध्य काल के आचार्यों जैसे सायण, महीधर आदि द्वारा वेदों के गलत अर्थ करना और ईसाईयों, मुसलमानों आदि द्वारा तथा साम्यवादी अथवा नास्तिक विचारधारा के समर्थकों द्वारा सुनी-सुनाई बातों को बिना जाँचे बार-बार रटना।

किसी भी सिद्धांत अथवा किसी भी तथ्य को आँख बंद कर मान लेना बुद्धिमान लोगों का लक्षण नहीं है। हम वेदों के सिद्धांत की परीक्षा वेदों की साक्षी द्वारा करेंगे, जिससे हमारी भ्रान्ति का निराकरण हो सके।

शंका 1 : क्या वेदों में मांस भक्षण का विधान है?

उत्तर : वेदों में मांस भक्षण का स्पष्ट निषेध किया गया है। अनेक वेद मन्त्रों में स्पष्ट रूप से किसी भी प्राणी को मारकर खाने का स्पष्ट निषेध किया गया है। जैसे-

हे मनुष्यो! जो गौ आदि पशु हैं वे कभी भी हिंसा करने योग्य नहीं हैं।

-यजुर्वेद 1/1

जो लोग प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते हैं वैसे ही अन्यों में भी वर्तते हैं-उनको शोक आदि प्राप्त नहीं होते।

-यजुर्वेद 40/7

चावल खाओ, जौ खाओ, उड़द खाओ और तिल खाओ। तुम्हारे लिए यही रमणीय भोज्य पदार्थों का भाग है। तुम किसी भी नर और मादा की कभी हिंसा मत करो।

-अथर्ववेद 6/140/2

जो नर और मादा, भ्रूण और अण्डों के नाश से उपलब्ध हुए मांस को कच्चा या पकाकर खाते हैं, हमें उनका विरोध करना चाहिए।

- अथर्ववेद 8/6/23

निर्दोषों को मारना निश्चित ही महापाप है, हमारे गाय, घोड़े और पुरुषों को मत मार।

-अथर्ववेद 10/1/29

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि वेदों के अनुसार मांस भक्षण निषेध है।

शंका 2 : क्या वेदों के अनुसार यज्ञों में पशु बलि का विधान है?

समाधान : यज्ञ की महत्ता का गुणगान करते हुए वेद कहते हैं कि सत्यनिष्ठ विद्वान् लोग यज्ञों द्वारा ही पूजनीय परमेश्वर की पूजा करते हैं। 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' आदि आर्ष वचनों के अनुसार यज्ञ-कर्म में सब श्रेष्ठ धर्मों का समावेश होता है। यज्ञ शब्द जिस यज् धातु से बनता हैं उसके अर्थ देवपूजा, संगतिकरण और दान हैं। । यज्ञ न करने वाले के लिए वेद कहते हैं कि जो यज्ञमयी नौका पर चढ़ने में समर्थ नहीं होते वे कुत्सित, अपवित्र आचरण वाले होकर यही इसी लोक में नीचे-नीचे गिरते जाते हैं। वेद यज्ञ को परमेश्वर की प्राप्ति का साधन बताते हैं, जिसमें हिंसा का नाम भी नहीं है। वैदिक यज्ञों में पशुबलि का विधान भ्रांत धारणा मात्र है।

यज्ञ में पशु बलि का विधान मध्य काल की देन है। प्राचीन काल में यज्ञों में पशु बलि आदि प्रचलित नहीं थे। मध्यकाल में जब गिरावट का दौर आया तब मांसाहार, शराब आदि का प्रयोग प्रचलित हो गया। मत मतान्तरों को मानने वाले लोगों ने अपने मनमाने वेदभाष्य बनाकर वेद में मांसाहार, पशुबलि; गाय, अश्व, बैल आदि का वध करने का विधान प्रचारित किया, जिसे देखकर मैक्समूलर, विल्सन, ग्रिफ्फिथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों में मांसाहार का भरपूर प्रचार कर न केवल पवित्र वेदों को कलंकित किया, अपितु लाखों निर्दोष प्राणियों को मरवा कर मनुष्य जाति को पापी बना दिया। मध्य काल में हमारे देश में वाम मार्ग का प्रचार हो गया था जो मांस, मदिरा, मैथुन, मीन आदि से मोक्ष की प्राप्ति मानता था। आचार्य सायण आदि यों तो विद्वान् थे पर वाम मार्ग से प्रभावित होने के कारण वेदों में मांस भक्षण एवं पशु बलि का विधान दर्शा बैठे। निरीह प्राणियों के इस तरह कत्लेआम एवं बोझिल कर्मकांड को देखकर ही महात्मा बुद्ध एवं महावीर ने वेदों को हिंसा से लिप्त मानकर उन्हें अमान्य घोषित कर दिया, जिससे वेदों की बड़ी हानि हुई एवं अवैदिक मतों का प्रचार हुआ। क्षत्रिय धर्म का नाश होने से देश को गुलामी सहनी पड़ी। वेदों में मांसभक्षण के विधान के गलत प्रचार के कारण देश की कितनी हानि हुई इसका अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। कहाँ तो वेदों में जीव रक्षा और निरामिष भोजन का आदेश है और कहाँ उसके विपरीत उन्हीं वेदों में पशु आदि की यज्ञों में बलि? प्राचीन आर्ष भाष्यों में मांस भक्षण,पशुबलि आदि का लेश भी नहीं है। स्वामी दयानन्द ने वेदों का भाष्य करके इस भ्रान्ति का निवारण कर दिया, लेकिन जो वेद के विरोध

का ही खाते हैं उनकी कोई दवा नहीं है, क्योंकि उनका तो उद्देश्य ही वेदों की प्रतिष्ठा को कम करना है।

वेद में यज्ञ के लिए अध्वर शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ निरुक्त के अनुसार 'हिंसारहित कर्म' है।

वेद के कुछ मंत्रार्थ द्रष्टव्य हैं-

हे ज्ञानस्वरुप परमेश्वर, तू हिंसा रहित यज्ञों (अध्वर) में ही व्याप्त होता है और ऐसे ही यज्ञों को सत्यनिष्ठ विद्वान् लोग सदा स्वीकार करते हैं।

-ऋग्वेद 1/1/4

यज्ञ के लिए अध्वर (हिंसारहित) शब्द का प्रयोग ऋग्वेद 1/1/8; 1/14/21; 1/128/4; 1/19/1; 3/21/1 सामवेद 2/4/2, अथर्ववेद 4/24/3, अथर्ववेद 1/4/2 इत्यादि मन्त्रों में इसी प्रकार से हुआ है। अध्वर शब्द का प्रयोग चारों वेदों में अनेक मन्त्रों में होने से यह सिद्ध होता है कि यज्ञ में हिंसा कर्म निषिद्ध है, फिर पशुबलि का तो प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता।

हे प्रभु! मुझे सब प्राणी मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सब प्राणियों को मित्र की प्रेममय दृष्टि से देखूँ। हम सब आपस में मित्र की दृष्टि से देखें।

-यजुर्वेद 36/18

यजुर्वेद 1/1 में यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहते हुए पशुरक्षा का उपदेश किया है।

यजुर्वेद 6/11 में पति-पत्नी को उपदेश है कि पशुओं की रक्षा करें।

हे मनुष्य तुम दो पैर वाले अर्थात् अन्य मनुष्यों एवं चार पैर वाले अर्थात् पशुओं की सदा रक्षा किया करो। -यजुर्वेद 14/8

चारों वेदों में अनेक मन्त्रों से यह सिद्ध होता है कि यज्ञों में पशु बलि तो दूर किसी भी प्रकार की हिंसा निषिद्ध है, अतः यह शंका केवल अनर्गल प्रलाप है कि वेद यज्ञ में पशु बलि का विधान करते हैं।

शंका 3 : क्या वेदों में वर्णित अश्वमेध, नरमेध, अजमेध, गोमेध में घोड़ा, मनुष्य, गौ की यज्ञों में बलि देने का विधान नहीं हैं?

उत्तर : मेध शब्द के तीन अर्थ हैं : 1-मेधा अथवा शुद्ध बुद्धि को बढ़ाना, 2- लोगों में एकता अथवा प्रेम को बढ़ाना 3- हिंसा। इसलिए मेध से केवल हिंसा शब्द का अर्थ ग्रहण करना उचित नहीं है। जब यज्ञ को अध्वर अर्थात् 'हिंसा रहित' कहा गया है तो उस के सन्दर्भ में 'मेध' का अर्थ हिंसा क्यों लिया जाये? बुद्धिमान व्यक्ति 'मेधावी' कहे जाते हैं। इसी तरह लड़कियों का नाम मेधा, सुमेधा इत्यादि रखा जाता है, तो क्या ये नाम उनके हिंसक होने के कारण रखे जाते हैं या बुद्धिमान होने के कारण?

अश्वमेध शब्द का अर्थ यज्ञ में अश्व की बलि देना नहीं है, अपितु शतपथ 13-1-6-3 और 13-2-2-3 के अनुसार राष्ट्र के गौरव, कल्याण और विकास के लिए किये जाने वाले सभी कार्य 'अश्वमेध' हैं।

गोमेध का अर्थ यज्ञ में गौ की बलि देना नहीं हैं अपितु अन्न को दूषित होने से बचाना, अपनी इन्द्रियों को वश में रखना, सूर्य की किरणों से उचित उपयोग लेना, धरती को पवित्र या साफ रखना -'गोमेध' यज्ञ है, क्योंकि गो के अर्थ अन्न, इन्द्रिय, सूर्य की किरण, पृथ्वी आदि हैं।

नरमेध का अर्थ मनुष्य की बलि देना नहीं है, अपितु मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके शरीर का वैदिक रीति से दाह संस्कार करना नरमेध यज्ञ है। मनुष्यों को उत्तम कार्यों के लिए प्रशिक्षित एवं संगठित करना नरमेध या पुरुषमेध या नृमेध यज्ञ कहलाता है।

अजमेध का अर्थ बकरी आदि की यज्ञ में बलि देना नहीं है, अपितु अज कहते हैं बीज, अनाज या धान आदि को। इस प्रकार कृषि की पैदावार बढ़ाना अजमेध है। इसका सीमित अर्थ अग्निहोत्र में धान आदि की आहुति देना भी है।

शंका 4 : यजुर्वेद मन्त्र 24/29 में 'हस्तिन आ लभते' अर्थात् हाथियों को मारने का विधान है?

समाधान : 'लभ्' धातु से बनने वाले आलम्भ शब्द का अर्थ मारना नहीं अपितु अच्छी प्रकार से प्राप्त करना, स्पर्श करना या देना होता है। हस्तिन शब्द का अर्थ अगर हाथी ले तो इस मंत्र में राजा को अपने राज्य के विकास हेतु हाथी आदि को प्राप्त करना, अपनी सेनाओं को सुदृढ़ करना बताया गया है। यहाँ पर हिंसा का कोई विधान नहीं है।

पारस्कर गृह्य सूत्र 2/2/16 में कहा गया है कि आचार्य ब्रह्मचारी का आलम्भ अर्थात् हृदय का स्पर्श करता है। यहाँ आलम्भ का अर्थ स्पर्श आया है।

पारस्कर सूत्र 1/8 /8 में भी आया है कि वर वधू के दक्षिण कंधे के ऊपर हाथ ले जाकर उसके हृदय का स्पर्श करे। यहाँ पर भी आलम्भ का अर्थ स्पर्श आया है।

अगर यहाँ पर आलम्बन शब्द का अर्थ मारना ग्रहण करें तो यह कैसे युक्तिसंगत एवं तर्क संगत सिद्ध होगा?

शंका 5 : वेद, ब्राह्मण एवं सूत्र ग्रंथों में संज्ञपन शब्द आया है जिसका अर्थ पशु को मारना है?

समाधान : संज्ञपन शब्द का अर्थ ज्ञान देना, दिलाना तथा मेल कराना है।

अथर्ववेद 6/10/14-15 में लिखा है कि तुम्हारे मन का ज्ञानपूर्वक अच्छी प्रकार (संज्ञपन) मेल हो, तुम्हारे हृदयों का ज्ञान पूर्वक अच्छी प्रकार (संज्ञपन) मेल हो। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण 1/4 में एक आख्यानिका है, जिसका अर्थ है- मैं वाणी तुझ मन से अधिक अच्छी हूँ, तू जो कुछ मन में चिंतन करता है मैं उसे प्रकट करती हूँ, मैं उसे अच्छी प्रकार से दूसरों को जतलाती हूँ (संज्ञपयामि) संज्ञपन शब्द का मेल के स्थान पर हिंसापरक अर्थ करना अज्ञानता का परिचायक हैं।

शंका 6 : वेदों में 'गोघ्न' शब्द आता है, जिसका सीधा अर्थ है- गौ को मारना। अर्थात् गायों के वध करने का आदेश है?

समाधान : गोघ्न शब्द में हन् धातु का प्रयोग है, जिसके दो अर्थ हैं- हिंसा और गति। गोघ्न में उसका गति अथवा ज्ञान, गमन, प्राप्ति विषयक अर्थ है। मुख्य भाव यहाँ प्राप्ति का है, अर्थात् जिसे उत्तम गौ प्राप्त कराई जाये।

हिंसा के प्रकरण में वेद का उपदेश गौ की हत्या करने वाले से दूर रहने का है। ऋग्वेद 1/114/10 में लिखा है कि जो गोघ्न=गौ की हत्या करनेवाला है, वह नीच पुरुष है, वह तुमसे दूर रहे। वेदों के कई उद्धरणों से पता चलता है कि 'हन्' का प्रयोग किसी के निकट जाने या पास पहुंचने के लिए भी किया जाता है। अथर्ववेद 6/101/1 में पति को पत्नी के पास जाने का उपदेश है। इस मंत्र का यह अर्थ- पति पत्नी के पास जाये, यह होता है न कि पति द्वारा पत्नी को मारना। इसलिए हनन का केवल हिंसा अर्थ में प्रयोग करना भ्रम फैलाने के अलावा और कुछ नहीं है।

शंका 7 : वेदों में अतिथि को भोजन में गौ आदि का मांस पका कर खिलाने का आदेश है?

समाधान : ऋग्वेद के मंत्र 10/68/3 में अतिथिनीर्गाः का अर्थ अतिथियों के लिए गौएं किया गया है। वेद के विरोधी इसका तात्पर्य यह लेते हैं कि किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के आने पर गौ को मारकर उसके मांस से उसे तृप्त किया जाता था। यहाँ पर जो भ्रम हुआ है उसका मुख्य कारण अतिथिनी शब्द को समझने की गलती के कारण हुआ है। यहाँ पर उचित अर्थ बनता है- ऐसी गौएं जो अतिथियों के पास दानार्थ लाई जायें, उन्हें दान की जायें। Monier William ने भी अपने संस्कृत इंग्लिश शब्दकोश में अतिथिग्व का अर्थ "To whom guests should go " (P-14) अर्थात् 'जिसके पास अतिथि प्रेमवश जायें' ऐसा किया है। श्री Bloomfield ने भी इसका अर्थ "Presenting cows to guests" अर्थात् अतिथियों को गौएं भेंट करनेवाला ही किया है। अतिथि को गौ मांस परोसना कपोलकल्पित है।

शंका 8 : वेदों में बैल को मार कर खाने का आदेश है?

समाधान : यह भी एक भ्रान्ति है कि वेदों में बैल को खाने का आदेश है। वेदों में जैसे गौ के लिए अघ्न्या अर्थात् 'न मारने योग्य' शब्द का प्रयोग है उसी प्रकार से बैल के लिए अघ्न्य शब्द का प्रयोग है।

यजुर्वेद 12/73 में अघन्या शब्द का प्रयोग बैल के लिए हुआ है। इसकी पुष्टि सायणाचार्य ने काण्वसंहिता में भी की है।

इसी प्रकार अथर्ववेद 9/4/17 में लिखा है कि बैल सींगों से अपनी रक्षा स्वयं करता है, परन्तु मानव समाज को भी उसकी रक्षा में भाग लेना चाहिए। अथर्ववेद 9/4/19 मंत्र में बैल के लिए अघन्य और गौ के लिए अघन्या शब्दों का वर्णन मिलता है। यहाँ पर लिखा है कि ब्राह्मणों को ऋषभ (बैल) का दान करके यह दाता अपने को स्वार्थ त्याग द्वारा श्रेष्ठ बनाता है। वह अपनी गोशाला में बैलों और गौओं की पुष्टि देखता है।

अथर्ववेद 9/4/20 मंत्र में कहा है कि जो सत्पात्र में वृषभ (बैल) का दान करता है, उसकी गौएं, संतान आदि उत्तम रहती हैं।

इन उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि गौ के साथ-साथ बैल की रक्षा का वेद सन्देश देते हैं।

शंका 9 : वेद में वृद्ध गौ अथवा बैल (उक्षा) को मारने का विधान है?

समाधान : शंका का कारण ऋग्वेद 8/43/11 मंत्र के अनुसार वन्ध्या गौओं की अग्नि में आहुति देने का विधान बताया गया हैं। यह अर्थ सर्वथा अशुद्ध है। इस मंत्र का वास्तविक अर्थ निघण्टु 3/3 के अनुसार यह है कि जैसे महान सूर्य आदि भी जिसके प्रलयकाल में (वशा) अन्न व भोज्य के समान हो जाते हैं। इसका शतपथ 5/1/3 के अनुसार अर्थ हैं पृथ्वी भी जिसके (वशा) अन्न के समान भोज्य है, ऐसे परमेश्वर की नमस्कारपूर्वक स्तुतियों से सेवा करते हैं। वेदों के विषय में इस भ्रान्ति के होने का मुख्य कारण वशा, उक्षा, ऋषभ आदि शब्दों के अर्थ न समझ पाना है।

यज्ञ प्रकरण में उक्षा और वशा दोनों शब्दों के औषधि परक अर्थ हैं, जिन्हें अग्नि में डाला जाता है। सायणाचार्य एवं मोनियर विलियम्स के अनुसार उक्षा शब्द के अर्थ सोम, सूर्य, ऋषभ नामक औषधि हैं।

वशा शब्द के अन्य अर्थ अथर्ववेद 1/10/1 के अनुसार ईश्वरीय नियम वा नियामक शक्ति हैं। शतपथ 1/8/3/15 के अनुसार वशा का अर्थ पृथ्वी भी है। अथर्ववेद 20/103/15 के अनुसार वशा का अर्थ संतान को वश में रखने वाली उत्तम स्त्री भी है।

इस सत्यार्थ को न समझ कर वेद मन्त्रों का अनर्थ करना निंदनीय है।

शंका 10 : वेदादि धर्म ग्रंथों में माष शब्द का उल्लेख हैं, जिसका अर्थ मांस खाना है?

समाधान : माष शब्द का प्रयोग 'माषौदनम्' के रूप में हुआ है। इसे बदल कर किसी मांसभक्षी ने मांसौदनम् अर्थ कर दिया है। यहाँ पर माष एक दाल के रूप में वर्णित है। यहाँ मांस का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आयुर्वेद (सुश्रुत संहिता शरीर अध्याय 2) गर्भवती स्त्रियों के लिए मांसाहार को सख्त मना करता है और उत्तम संतान पाने के लिए माष सेवन को हितकारी कहता है। इससे क्या स्पष्ट होता है? यही कि माष शब्द का अर्थ मांसाहार नहीं अपितु इसमें दाल आदि को खाने का आदेश है। फिर भी अगर कोई माष को मांस ही कहना चाहे, तब भी मांस को निरुक्त 4/1/3 के अनुसार मनन साधक, बुद्धिवर्धक और मन को अच्छी लगने वाली वस्तु जैसे फल का गूदा, खीर आदि को कहा गया है। प्राचीन ग्रंथों में मांस अर्थात गूदा खाने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। जैसे चरक संहिता में आम्रमांसं (आम का गूदा), खजूरमांसं (खजूर का गूदा) आदि। तैत्तिरीय संहिता 2-32-8 में दही, शहद और धान को मांस कहा गया है।

इससे यही सिद्ध होता है कि वेदादि शास्त्रों में जहाँ पर माष शब्द आता है अथवा मांस के रूप में भी जिसका प्रयोग हुआ हैं उसका अर्थ दाल अथवा फलों का मध्य भाग अर्थात गूदा है।

शंका 11 : वेदों में यज्ञ में घोड़े की बलि देने का और घोड़े का मांस पकाने का आदेश है?

समाधान : यजुर्वेद के 25 वें अध्याय में सायण, महीधर, उव्वट, ग्रिफ्फिथ, मैक्समूलर आदि ने अश्व हिंसापरक अर्थ किये हैं। इसका मुख्य कारण वाजिनम् शब्द के अर्थ को न समझना है। वाजिनम् का अश्व के साथ साथ अन्य अर्थ है शूर, बलवान, गतिशील और तेज।

यजुर्वेद के 25/34 मंत्र का अर्थ करते हुए सायण लिखते हैं कि अग्नि से पकाए, मरे हुए तेरे अवयवों से जो मांस-रस उठता है वह वह भूमि या तृण पर न गिरे, वह चाहते हुए देवों को प्राप्त हो। इस मंत्र का अर्थ स्वामी दयानंद लिखते हैं- हे मनुष्य जो ज्वर आदि से पीड़ित अंग हो उन्हें वैद्य जनों से निरोग कराना चाहिए, क्योंकि उन वैद्य जनों द्वारा जो औषध दिया जाता हैं वह रोगीजन के लिए हितकारी होता है एवं मनुष्य को व्यर्थ वचनों का उच्चारण न करना चाहिए, किन्तु विद्वानों के प्रति उत्तम वचनों का ही सदा प्रयोग करना चाहिए। अश्व की हिंसा के विरुद्ध यजुर्वेद 13/47 मंत्र का शतपथकार ने अर्थ लिखा है कि अश्व की हिंसा न कर।

यजुर्वेद 25/44 के यज्ञ में घोड़े की बलि के समर्थन में अर्थ करते हुए सायण लिखते हैं कि हे अश्व! तू अन्य अश्वों की तरह मरता नहीं, क्योंकि तुझे देवत्व प्राप्ति होगी और न हिंसित होता है क्योंकि व्यर्थ हिंसा का यहाँ अभाव है। प्रत्यक्ष रूप में अवयव नाश होते हुए ऐसा कैसे कहते हो? इसका उत्तर देते हैं कि सुंदर देवयान मार्गों से देवों को तू प्राप्त होता है, इसलिए यह हमारा कथन सत्य है। इस मंत्र का स्वामी दयानंद अर्थ करते हैं कि जैसे विद्या से अच्छे प्रकार प्रयुक्त अग्नि, जल, वायु इत्यादि से युक्त रथ में स्थित हो के मार्गों से सुख से जाते हैं, वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़कर दिव्य सुखों को प्राप्त हो।

पाठक स्वयं विचार करें। कहाँ स्वामी दयानंद द्वारा किया गया सच्चा उत्तम अर्थ और कहा सायण आदि के हिंसापरक अर्थ! दोनों में आकाश-पाताल का भेद है। ऐसा ही भेद वेद के उन सभी मन्त्रों में है जिनका अर्थ हिंसापरक रूप में किया गया है। अतः वे मानने योग्य नहीं हैं।

शंका 12 : क्या वेदों के अनुसार इंद्र देवता बैल खाता है?

समाधान : इंद्र द्वारा बैल खाने के समर्थन में ऋग्वेद 10/28/3 और 10/86/14 मंत्र का उद्धरण दिया जाता है। यहाँ पर वृषभ और उक्षन् शब्दों के अर्थ से अनभिज्ञ लोग उनका अर्थ बैल कर देते हैं। ऋग्वेद में लगभग 20 स्थलों पर अग्नि को, 65 स्थलों पर इंद्र को, 11 स्थलों पर सोम को, 3 स्थलों पर पर्जन्य को, 5 स्थलों पर बृहस्पति को, 5 स्थलों पर रूद्र को वृषभ कहा गया है। व्याख्याकारों के अनुसार वृषभ का अर्थ यज्ञ है। उक्षन् शब्द का ऋग्वेद में अग्नि, सोम, आदित्य, मरुत आदि के लिए प्रयोग हुआ है।

जब वृषभ और उक्षन् शब्दों के इतने सारे अर्थ वेदों में दिए गये हैं तब व्यर्थ ही बैल अर्थ कर उसे इंद्र को खिलाना युक्तिसंगत एवं तर्कपूर्ण नहीं है।

इसी सन्दर्भ में ऋग्वेद 2/52/1 में इंद्र के भोज्य पदार्थ निरामिष धान, करम्भ, पुरोडाश तथा पेय सोमरस हैं न कि बैल।

शंका 13 : वेदों में गौ का क्या स्थान है?

समाधान : यजुर्वेद 8/43 में गाय का नाम इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योति, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुति और अघ्न्या कहा गया है। स्तुति की पात्र होने से इडा, रमयित्री होने से रन्ता, इसके दूध की यज्ञ में आहुति दी जाने से हव्या, चाहने योग्य होने से काम्या, हृदय को प्रसन्न करने से चन्द्रा, अखंडनीय होने से अदिति, दुग्धवती होने से सरस्वती, महिमशालिनी होने से मही, विविध रूप में श्रुत होने से विश्रुति तथा न मारी जाने योग्य होने से अघ्न्या कहलाती है।

अघ्न्या शब्द में गाय का वध न करने का सन्देश इतना स्पष्ट है कि विदेशी लेखक भी उसे भली प्रकार से स्वीकार करते हैं।

हे गौओ, तुम पूज्य हो, तुम्हारी पूज्यता मैं भी प्राप्त करूं।

– यजुर्वेद 3/20

मैं समझदार मनुष्य को कहे देता हूं कि तू बेचारी बेकसूर गाय की हत्या मत कर, वह अदिति है, काटने-चीरने योग्य नहीं है।

– ऋग्वेद 8/101/15

उस देवी गौ को मनुष्य अल्प बुद्धि होकर मारे-काटे नहीं।

– ऋग्वेद 8/101/16

निरपराध की हत्या बड़ी भयंकर होती है, अतः तू हमारे गाय, घोड़े और पुरुष को मत मार।

– अथर्ववेद 10/1/29

गौएं वधशाला में न जाएं।

– ऋग्वेद 6/28/4

गाय का वध मत कर।

– यजुर्वेद 13/43

वे लोग मूर्ख हैं जो कुत्ते से या गाय के अंगों से यज्ञ करते हैं।

–अथर्ववेद 7/5/5

इसके अतिरिक्त भी वेदों में अनेक मंत्र गौ रक्षा के लिए दिए गये हैं। पाठक विचार करें कि जब वेदों में गौ रक्षा कि इतनी स्पष्ट साक्षी है, तब उन्हीं वेदों में यज्ञ में पशु हिंसा का सन्देश कैसे हो सकता है?

शंका 14 : वेदों में गौ हत्या करने वाले के लिए क्या विधान है?

समाधान : वेदों में गाय हत्यारे के लिए कठिन से कठिन दंड का विधान है।

जो गौ हत्या करने वाला हो उसे मृत्यु दंड दिया जाये।

– यजुर्वेद 30/18

हे गौऔ ! तुम प्रजाओं से सम्पन्न होकर उत्तम घास वाले चरागाहों में विचरो। सुखपूर्वक जिनसे जल पिया जा सके ऐसे जलाशयों में से शुद्ध जल को पियो। चोर और घातक तुम्हारा स्वामी न बने, क्रूर पुरुष का शस्त्र भी तुम्हारे ऊपर न गिरे।

–अथर्ववेद 4/21/7

गौ हत्या करने वाले के लिए स्पष्ट कहा गया है कि यदि तू हमारे गाय, घोड़े आदि पशुओं की हत्या करेगा तो हम तुझे सीसे की गोली से उड़ा देंगे।

–अथर्ववेद 1/16/4

वेदों में गौ हत्या पर मृत्यु दंड का विधान होने के बाद भी मध्य काल में यज्ञों में पशु बलि प्रचलित होने का कारण राजाओं द्वारा संस्कृत एवं वेद ज्ञान से अनभिज्ञ होना था। दंड देने का कर्त्तव्य राजाओं का है। जब राजा को ही यह नहीं सिखलाया गया कि गौ हत्यारे को क्या दंड दे तो वह कैसे दंड देते? इसके विपरीत यह बताया गया कि होम में बलि दिया गया पशु स्वर्ग को जाता है।

सत्य यही है कि यज्ञ में किसी भी पशु की बलि का कोई भी विधान वेदों के सत्य उपदेश के अनुकूल नहीं है एवं जो कुछ भी मध्य काल में प्रचलित हुआ वह वेदों के मनमाने अर्थ करने से हुआ है जो कि त्यागने योग्य है। एक ओर भारतीय आचार्य वाममार्ग के प्रभाव में आकर वेदों को मांसभक्षण का समर्थक घोषित करने पर उतारू थे, दूसरी ओर विदेशी चिंतक अपनी मतान्धता के जोश में वेदों के स्वार्थपूर्ति के लिए निंदक अर्थ निकाल रहे थे जिससे कि वेदों के प्रति भारतीय जनमानस में श्रद्धा समाप्त हो जाये और उनका मार्ग प्रशस्त हो सके। धन्य हैं स्वामी दयानंद जिन्होंने अपनी दूरदृष्टि से इस षड्यन्त्र को न केवल समझा, अपितु निराकरण के लिए वेदों का उचित भाष्य भी किया। हम सभी को स्वामी जी के इस उपकार का आभारी होना चाहिए।

2 वेद और शूद्र

जातिवाद सभ्य समाज के माथे पर एक कलंक है, जिसके कारण मानव मानव के प्रति न केवल असंवेदनशील बन गया है, अपितु शत्रु समान व्यवहार करने लग गया है। समस्त मानव जाति ईश्वर की संतान है, यह तथ्य जानने के बाद भी छुआ छूत के नाम पर, ऊँच नीच के नाम पर, आपस में भेदभाव करना अज्ञानता का बोधक है।

कुछ लोगों का विचार है कि जातिवाद का मूल कारण वेद और मनुस्मृति हैं, परन्तु वैदिक काल में जातिवाद और प्राचीन भारत में छुआछूत के अस्तित्व से तो विदेशी लेखक भी स्पष्ट रूप से इंकार करते हैं।

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था प्रधान थी, जिसके अनुसार जैसा जिसका गुण वैसे उसके कर्म, जैसे जिसके कर्म वैसा उसका वर्ण। जातिवाद रूपी विष वृक्ष के कारण हमारे समाज को कितने अभिशाप झेलने पड़े! जातिवाद के कारण आपसी मतभेदों में वृद्धि हुई, सामाजिक एकता और संगठन का नाश हुआ जिसके कारण विदेशी हमलावरों का आसानी से निशाना बन गये। एक संकीर्ण दायरे में वर-वधू न मिलने से बेमेल विवाह आरम्भ हुए जिसका परिणाम दुर्बल एवं गुण रहित संतान के रूप में निकला। आपसी मेल न होने के कारण विद्या, गुण, संस्कार, व्यवसाय आदि में उन्नति रुक गई।

शंका 1 : जाति और वर्ण में क्या अंतर है?

समाधान : जाति का अर्थ है उद्‌भव के आधार पर किया गया वर्गीकरण। न्याय सूत्र 2/2/71 में लिखा है 'समानप्रसवात्मिका जातिः' अर्थात् जिनके प्रसव अर्थात् जन्म का मूल समान हो अथवा जिनकी उत्पत्ति का प्रकार एक जैसा हो वह एक जाति कहलाते हैं।

आकृतिर्जातिलिङ्गाख्या : न्याय दर्शन 2/2/65 अर्थात् जिन व्यक्तियों कि आकृति (इन्द्रियादि) एक समान हैं, उन सबकी एक जाति है।

हर जाति विशेष के प्राणियों के शारीरिक अंगों में एक समानता पाई जाती है। सृष्टि का नियम है कि कोई भी एक जाति कभी भी दूसरी जाति में परिवर्तित नहीं हो सकती है और न ही भिन्न भिन्न जातियाँ आपस में संतान को उत्पन्न कर सकती हैं। इसलिए सभी जातियाँ ईश्वर निर्मित हैं न कि मानव निर्मित हैं। सभी मानवों की उत्पत्ति, शारीरिक रचना, संतान उत्पत्ति आदि

एक समान होने के कारण उनकी एक ही जाति है और वह है मनुष्य।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए प्रयुक्त किए गए 'वर्ण' शब्द का अर्थ है- जिसका वरण किया जाए, अर्थात् जिसे चुना जाए। वर्ण को चुनने का आधार गुण, कर्म और स्वभाव होता है। वर्णाश्रम व्यवस्था पूर्ण रूप से वैदिक है एवं इसका मुख्य प्रयोजन समाज में मनुष्य को परस्पर सहयोगी बनाकर भिन्न-भिन्न कामों को परस्पर बाँटना, किसी भी कार्य को उसके अनुरूप दक्ष व्यक्ति से करवाना, सभी मनुष्यों को उनकी योग्यता अनुरूप काम पर लगाना एवं उनकी आजीविका का प्रबंध करना है।
आरम्भ में सभी मनुष्यों का एक ही वर्ण था। लौकिक व्यवहारों की सिद्धि के लिए कामों को परस्पर बांट लिया। यह विभाग करने की प्रक्रिया पूर्ण रूप से योग्यता पर आधारित थी। कालांतर में वर्ण के स्थान पर जाति शब्द रूढ़ हो गया। मनुष्यों ने अपने वर्ण अर्थात् योग्यता के स्थान पर अपनी अपनी भिन्न-भिन्न जातियाँ निर्धारित कर लीं। गुण, कर्म और स्वभाव के स्थान पर जन्म के आधार पर अलग-अलग जातियों में मनुष्य न केवल विभाजित हो गया अपितु एक दूसरे से भेदभाव भी करने लगा। वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था का स्थान छद्म एवं मिथ्या जातिवाद ने लिया।

शंका 2 : मनुष्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में विभाजित करने से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ?

समाधान : प्रत्येक मनुष्य दूसरों पर जीवन निर्वाह के लिए निर्भर है। कोई भी व्यक्ति परस्पर सहयोग एवं सहायता के बिना न मनुष्योचित जीवन व्यतीत कर सकता है और न ही जीवन में उन्नति कर सकता है। अतः इसके लिए आवश्यक था कि व्यक्ति जीवनयापन के लिए महत्वपूर्ण सभी कर्मों का विभाजन कर ले एवं उस कार्य को करने हेतु जो-जो शिक्षा अनिवार्य है, उस उस शिक्षा को ग्रहण करे। सभी जानते हैं कि अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित व्यक्ति से हर प्रकार से शिक्षित एवं प्रक्षिशित व्यक्ति उस कार्य को भली प्रकार से कर सकते हैं। समाज निर्माण का यह भी मूल सिद्धांत है कि समाज में कोई भी व्यक्ति बेकार न रहे एवं हर व्यक्ति को आजीविका का साधन मिले। विद्वान् लोग भली प्रकार से जानते हैं कि जिस प्रकार से शरीर का कोई एक अंग प्रयोग में न लाने से बाकी अंगों को भली प्रकार से कार्य करने में व्यवधान डालता है, उसी प्रकार समाज का कोई भी व्यक्ति बेकार होने से सम्पूर्ण समाज की हानि होती है। सब भली प्रकार से जानते हैं कि भिखारी, चोर, डाकू, लूटमार आदि करने वाले समाज पर किस प्रकार से बोझ हैं। इसलिए वेदों में समाज को व्यवस्थित करने का आदेश दिया गया

है कि ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए ब्राह्मण, राज्य की रक्षा के लिए क्षत्रिय, व्यापार आदि की सिद्धि के लिए वैश्य एवं सेवा कार्य के लिए शूद्र की उत्पत्ति होनी चाहिए।

-यजुर्वेद 30/5

इससे यही सिद्ध होता है कि वर्ण व्यवस्था का मूल उद्देश्य समाज में गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार विभाजन है।

शंका 3 : आर्य और दास/दस्यु में क्या भेद है?

समाधान : वेदों में आचार भेद के आधार पर दो विभाग किये गये हैं- आर्य एवं दस्यु। ब्राह्मण आदि वर्ण, कर्म भेद के आधार पर निर्धारित हैं। स्वामी दयानंद के अनुसार ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक चार वर्ण हैं और चारों आर्य हैं। मनु स्मृति 10/63 के अनुसार चारों वर्णों का धर्म एक ही है- वह है हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना एवं इन्द्रिय निग्रह करना।
आर्य शब्द कोई जातिवाचक शब्द नहीं है, अपितु गुणवाचक शब्द है। आर्य शब्द का अर्थ होता है- श्रेष्ठ अथवा बलवान, ईश्वर का पुत्र, ईश्वर के ऐश्वर्य का स्वामी, उत्तम गुणयुक्त, सद्गुण परिपूर्ण आदि। आर्य शब्द का प्रयोग वेदों में निम्नलिखित विशेषणों के लिए हुआ है-
श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए= (ऋग0 1/103/3, ऋग0 1/130/8, ऋग0 10/49/3),
इन्द्र का विशेषण= (ऋग0 5/34/6, ऋग0 10/138/3)
सोम का विशेषण= (ऋग0 10/63/5),
ज्योति का विशेषण= (ऋग0 10/43/4), व्रत का विशेषण (ऋग 10/65/11), प्रजा का विशेषण= (ऋग0 7/33/7),
वर्ण का विशेषण= (ऋग0 3/34/9)।
दास शब्द का अर्थ अनार्य, अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय व्यवहार शून्य, भृत्य, बल रहित शत्रु के लिए हुआ है, न कि किसी विशेष जाति के लोगों के लिए हुआ है। जैसे दास शब्द का अर्थ मेघ= (ऋग0 5/30/7, 6/26/5, 7/19/2), अनार्य= (ऋग0 10/22/8), अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय व्यवहार शून्य= (ऋग0 10/22/8), बल रहित शत्रु= (ऋग0 10/83/1) के लिए हुआ है।
दस्यु शब्द का अर्थ उत्तम कर्म हीन व्यक्ति=(ऋग0 7/5/6) अज्ञानी, अव्रती=(ऋग0 10/22/8), मेघ (ऋग0 1/59/6) आदि के लिए हुआ है, न कि किसी विशेष जाति अथवा स्थान के लोगों के लिए हुआ है।
इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आर्य और दस्यु शब्द गुण वाचक हैं, जाति

वाचक नहीं है। इन मंत्रों में आर्य और दस्यु, दास शब्दों के विशेषणों से पता चलता है कि अपने गुण, कर्म और स्वभाव के कारण ही मनुष्य आर्य और दस्यु नाम से पुकारे जाते हैं। अतः उत्तम स्वभाव वाले, शांतिप्रिय, परोपकारी गुणों को अपनाने वाले आर्य तथा अनाचारी और अपराधी प्रवृत्ति वाले दस्यु हैं।

शंका 4 : वेदों में शूद्र के अधिकारों के विषय में क्या कहा गया है?

समाधान : स्वामी दयानंद ने वेदों का अनुशीलन करते हुए पाया कि वेद सभी मनुष्यों और सभी वर्णों के लोगों के लिए वेद पढ़ने के अधिकार का समर्थन करते हैं। स्वामी जी के काल में शूद्रों को वेद अध्यनन का निषेध था, उसके विपरीत वेदों में स्पष्ट रूप से पाया गया कि शूद्रों को वेद अध्ययन का अधिकार स्वयं वेद ही देते हैं। वेदों में 'शूद्र' शब्द लगभग बीस बार आया है। कहीं भी उसका अपमानजनक अर्थों में प्रयोग नहीं हुआ है, और वेदों में किसी भी स्थान पर शूद्र के जन्म से अछूत होने, उन्हें वेदाध्ययन से वंचित रखने, अन्य वर्णों से उनका दर्जा कम होने या उन्हें यज्ञादि से अलग रखने का उल्लेख नहीं है।

हे मनुष्यों! जैसे मैं परमात्मा सबका कल्याण करने वाली ऋग्वेद आदि रूप वाणी का सब जनों के लिए उपदेश कर रहा हूँ, जैसे मैं इस वाणी का ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिए उपदेश कर रहा हूँ, शूद्रों और वैश्यों के लिए जैसे मैं इसका उपदेश कर रहा हूँ और जिन्हें तुम अपना आत्मीय समझते हो, उन सबके लिए इसका उपदेश कर रहा हूँ और जिसे 'अरण' अर्थात पराया समझते हो, उसके लिए भी मैं इसका उपदेश कर रहा हूँ, वैसे ही तुम भी आगे आगे सब लोगों के लिए इस वाणी के उपदेश का क्रम चलाते रहो। –यजुर्वेद 26/2

प्रार्थना है कि हे परमात्मा! आप मुझे ब्राह्मण का, क्षत्रियों का, शूद्रों का और वैश्यों का प्यारा बना दें। –अथर्ववेद 19/62/1 इस मंत्र का भावार्थ ये है कि हे परमात्मा, मेरा स्वभाव और आचरण ऐसा बन जाये जिसके कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और वैश्य सभी मुझे प्यार करें।

हे परमात्मन् आप हमारी रूचि ब्राह्मणों के प्रति उत्पन्न कीजिये, क्षत्रियों के प्रति उत्पन्न कीजिये, वैश्यों के प्रति उत्पन्न कीजिये और शूद्रों के प्रति उत्पन्न कीजिये। –यजुर्वेद 18/46 मंत्र का भाव यह है कि हे परमात्मन्! आपकी कृपा से हमारा स्वभाव और मन ऐसा हो जाये कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णों के लोगों के प्रति हमारी रूचि हो। सभी वर्णों के लोग हमें अच्छे लगें, सभी वर्णों के लोगों के प्रति हमारा बर्ताव सदा प्रेम और प्रीति का रहे।

हे शत्रु विदारक परमेश्वर! मुझको ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए, वैश्य के लिए, शूद्र के लिए और जिसके लिए हम चाह सकते हैं और प्रत्येक विविध प्रकार देखने वाले पुरुष के लिए प्रिय करें। –अथर्ववेद 19/32/8

इस प्रकार वेद की शिक्षा में शूद्रों के प्रति भी सदा ही प्रेम-प्रीति का व्यवहार करने और उन्हें अपना ही अंग समझने की बात कही गयी है।

शंका 5 : वेदों के शत्रु विशेष रूप से पुरुष सूक्त को जातिवाद की उत्पत्ति का मूल मानते हैं।

समाधान : पुरुष सूक्त 16 मन्त्रों का सूक्त हैं, जो चारों वेदों में मामूली अंतर में मिलता है। पुरुष सूक्त में जातिवाद के नहीं, अपितु वर्ण व्यवस्था के आधारभूत मंत्र हैं जिसमें 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को शरीर के मुख, भुजा, मध्य भाग और पैरों से उपमा दी गयी है। इस उपमा से यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार शरीर के यह चारों अंग मिलकर एक शरीर बनाते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण आदि चारों वर्ण मिलकर एक समाज बनाते हैं। जिस प्रकार शरीर के ये चारों अंग एक दूसरे के सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख अनुभव करते हैं, उसी प्रकार समाज के ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोगों को एक दूसरे के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझना चाहिए। यदि पैर में कांटा लग जाये तो मुख से दर्द की ध्वनि निकलती है और हाथ सहायता के लिए पहुँचते हैं। उसी प्रकार समाज में जब शूद्र को कोई कठिनाई पहुँचती है तो ब्राह्मण भी और क्षत्रिय भी उसकी सहायता के लिए आगे आयें। सब वर्णों में परस्पर पूर्ण सहानुभूति, सहयोग और प्रेम प्रीति का बर्ताव होना चाहिए। इस सूक्त में शूद्रों के प्रति कहीं भी भेद भाव की बात नहीं कही गयी है। कुछ अज्ञानी लोगों ने पुरुष सूक्त का मनमाना अर्थ यह किया कि ब्राह्मण क्योंकि सिर है इसलिए सबसे ऊँचे हैं, अर्थात् श्रेष्ठ हैं एवं शूद्र चूँकि पैर हैं, इसलिए सबसे नीचे अर्थात निकृष्ट हैं। यह गलत अर्थ है। पुरुषसूक्त में कर्म के आधार पर समाज का विभाजन है न कि जन्म के आधार पर।

इस सूक्त का एक और अर्थ इस प्रकार है कि जब कोई व्यक्ति समाज में ज्ञान के सन्देश को प्रचार प्रसार करने में योगदान दे तो वह ब्राह्मण अर्थात् समाज का सिर/शीश है। जो व्यक्ति समाज की रक्षा अथवा नेतृत्व करे तो वह क्षत्रिय अर्थात् समाज की भुजा है। यदि कोई व्यक्ति देश को व्यापार, धन आदि से समृद्ध करे तो वह वैश्य अर्थात् समाज की जंघा है और यदि कोई व्यक्ति विद्या से रहित है, अर्थात् शूद्र है तो वह इन तीनों वर्णों को अपने अपने कार्य करने में सहायता करे अर्थात् इन तीनों की नींव बने, मजबूत आधार बने।

शंका 6 : क्या वेदों में शूद्र को नीचा माना गया है?

समाधान : वेदों में शूद्र को अत्यंत परिश्रमी कहा गया है।

यजुर्वेद में आता है 'तपसे शूद्रम्' अर्थात श्रम अर्थात् मेहनत से अन्न आदि को उत्पन्न करने वाला तथा शिल्प आदि कठिन कार्य आदि का अनुष्ठान करने वाला शूद्र है। तप शब्द का प्रयोग अनंत सामर्थ्य से जगत् के सभी पदार्थों की रचना करने वाले ईश्वर के लिए वेद मंत्र में हुआ है।

वेदों में वर्णात्मक दृष्टि से शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं है। यजुर्वेद 30/22 में आता है कि मनुष्यों में निन्दित व्यभिचारी, जुआरी, नपुंसक जिनमें शूद्र (श्रमजीवी कारीगर) और ब्राह्मण (अध्यापक एवं शिक्षक) नहीं है, उनको दूर बसाओ। और जो राजा के सम्बन्धी हितकारी (सदाचारी) हैं उन्हें समीप बसाया जाये। इस मंत्र में व्यवहार सिद्धि से ब्राह्मण एवं शूद्र में कोई भेद नहीं है। ब्राह्मण विद्या से राज्य की सेवा करता है एवं शूद्र श्रम से राज्य की सेवा करता है। दोनों को समीप बसने का अर्थ यही दर्शाता है कि शूद्र अछूत शब्द का पर्यायवाची नहीं है एवं न ही नीचे होने का बोधक है।

ऋग्वेद 5/60/5 में आता है कि मनुष्यों में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा है। सभी आपस में एक समान बराबर के भाई हैं। सभी मिलकर लौकिक एवं पारलौकिक सुख एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति करें।

मनुस्मृति 10/63 में लिखा है कि हिंसा न करना, सच बोलना, दूसरे का धन अन्याय से न हरना, पवित्र रहना, इन्द्रियों का निग्रह करना, चारों वर्णों का समान धर्म है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से चारों वर्णों के आचार धर्म को एक माना गया है। वर्ण भेद से धार्मिक होने का कोई भेद नहीं है।

ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होने से, संस्कार से, वेद श्रवण से अथवा ब्राह्मण पिता की संतान होने भर से कोई ब्राह्मण नहीं बन जाता, अपितु सदाचार से ही मनुष्य ब्राह्मण बनता है। कोई भी मनुष्य कुल और जाति के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि चंडाल भी सदाचारी है, तो ब्राह्मण है।– महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय–226

जो ब्राह्मण दुष्ट कर्म करता है, वो दम्भी, पापी और अज्ञानी है– उसे शूद्र समझना चाहिए। और जो शूद्र सत्य और धर्म में स्थित है, उसे ब्राह्मण समझना चाहिए। – महाभारत वनपर्व अध्याय–216/14

शूद्र यदि ज्ञान सम्पन्न हो तो वह ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है और आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी नीच है। – भविष्य पुराण अध्याय– 44/33

शूद्रों के पठन पाठन के विषय में लिखा है कि दुष्ट कर्म न करने वाले का उपनयन अर्थात् (विद्या ग्रहण) करना चाहिए।– गृहसूत्र कांड 2 हरिहर भाष्य

कूर्म पुराण अध्याय 19 में शूद्र के वेदों का विद्वान बनने का वर्णन मिलता है।

शंका 7 : स्वामी दयानंद का वर्ण व्यवस्था एवं शूद्र शब्द पर क्या दृष्टिकोण है?

समाधान : स्वामी दयानंद के अनुसार 'जो मनुष्य विद्या पढ़ने का सामर्थ्य तो नहीं रखते और वे धर्माचरण करना चाहते हो तो विद्वानों के संग और अपनी आत्मा की पवित्रता से धर्मात्मा अवश्य हो सकते हैं। सब मनुष्यों का विद्वान् होना तो सम्भव नहीं है, परन्तु धार्मिक होने का सम्भव सभी के लिए है।–व्यवहार भानु स्वामी दयानंद

स्वामी जी आर्यों के चार वर्ण मानते हैं अतः शूद्र भी आर्य हैं।

स्वामी दयानद के अनुसार गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार मनुष्य की कर्म व्यवस्था होनी चाहिये। इस सन्दर्भ में सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में स्वामी जी प्रश्नोत्तर शैली में लिखते हैं–

प्रश्न : जिसके माता–पिता अन्य वर्णस्थ हों, उनकी संतान कभी ब्राह्मण हो सकती है?

उत्तर : बहुत से हो गये हैं, होते हैं और होंगे भी। जैसे छान्दोग्योपनिषद 4 /4 में जाबाल ऋषि अज्ञात कुल से, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण से और मातंग चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या, स्वभाव वाला है, वही ब्राह्मण होने के योग्य है और मूर्ख शूद्र होने के योग्य है। स्वामी दयानंद मनु 2/28 के अनुसार कहते हैं कि ब्राह्मण का शरीर रज वीर्य से नहीं होता है,

स्वाध्याय, जप, नाना विधि होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को पढ़ने–पढ़ाने, इष्टि आदि यज्ञों के करने, धर्म से संतान उत्पत्ति, मंत्र, महायज्ञ, अग्निहोत्र आदि यज्ञ, विद्वानों के संग, सत्कार, सत्य भाषण, परोपकार आदि सत्कर्म, दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठ आचार में वर्तने से ब्राह्मण का शरीर किया जाता है। रज वीर्य से वर्ण व्यवस्था मानने वाले सोचें कि जिसका पिता श्रेष्ठ उसका पुत्र दुष्ट और जिसका पुत्र श्रेष्ठ उसका पिता दुष्ट और कहीं कहीं दोनों श्रेष्ठ व दोनों दुष्ट देखने में आते हैं।

जो लोग गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था न मानकर रज वीर्य से वर्ण व्यवस्था मानते हैं उनसे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृष्टयन, मुसलमान हो गया है, उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? इस पर यही कहेंगे कि उसने 'ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये, इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है' इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मण आदि उत्तम कर्म करते हैं वही ब्राह्मण और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म स्वभाव वाला होवे, तो उसको भी उत्तम वर्ण में, और जो उत्तम

वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये। सत्यार्थ प्रकाश अष्टम् समुल्लास में स्वामी दयानंद लिखते हैं- श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुए। आर्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार भेद हुए। मनु स्मृति के अनुसार जो शूद्र कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गुण, कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये। वैसे ही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण, कर्म स्वभाव शुद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाये। वैसे क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होकर ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण वा शुद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो जो पुरुष व स्त्री हो वह वह उसी वर्ण में गिना जावे।

– सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास

आपस्तम्ब सूत्र 2/5/1/1 का प्रमाण देते हुए स्वामी दयानंद कहते हैं- धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम उत्तम वर्णों को प्राप्त होता है, और वह उसी वर्ण में गिना जावे, कि जिस जिस के योग्य होवे। वैसे ही अधर्माचरण से पूर्व-पूर्व अर्थात् उत्तम उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है, और उसी वर्ण में गिना जावे।

स्वामी दयानंद जातिवाद के प्रबल विरोधी और वर्ण व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। वेदों में शूद्रों के पठन पाठन के अधिकार एवं साथ बैठ कर खान-पान आदि करने के लिए उन्होंने विशेष प्रयास किये थे।

शंका 8 : क्या वेदादि शास्त्रों में शूद्र को अछूत बताया गया है?

समाधान : वेदों में शूद्रों को आर्य बताया गया है, इसलिए उन्हें अछूत समझने का प्रश्न ही नहीं उठता है। वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से सिद्ध होता है कि ब्राह्मण वर्ण से से लेकर शूद्र वर्ण आपस में एक साथ अन्न ग्रहण करने से परहेज नहीं करते थे।

वेदों में स्पष्ट रूप से एक साथ भोजन करने का आदेश है।

हे मित्रों तुम और हम मिलकर बलवर्धक और सुगंध युक्त अन्न को खायें अर्थात् सहभोज करें। -ऋग्वेद 9/98/2

हे मनुष्यो, तुम्हारे पानी पीने के स्थान और तुम्हारा अन्न सेवन अथवा खान पान का स्थान एक साथ हो। -अथर्ववेद 6/30/6

महाराज दशरथ के यज्ञ में शूद्रों का पकाया हुआ भोजन ब्राह्मण, तपस्वी और शूद्र मिलकर करते थे। – वाल्मीकि रामायण

श्री रामचंद्र जी द्वारा भीलनी शबरी के आश्रम में जाकर उनके पाँव छूना एवं

उनका आतिथ्य स्वीकार करना, निषादराज से भेंट होने पर उनका आलिंगन करना। – वाल्मीकि रामायण

यह प्रमाण इस तथ्य का उदबोधक है कि रामायण काल में भील, निषाद शूद्र आदि को अछूत नहीं समझा जाता था।

– महाभारत अनुशासनपर्व 1/19

राजा धृतराष्ट्र के यहां पूर्व के सदृश अरालिक और सूपकार आदि शूद्र भोजन बनाने के लिए नियुक्त हुए थे।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल में शूद्र अछूत नहीं थे। कालांतर में कुछ अज्ञानी लोगों ने छुआछूत की गलत प्रथा आरम्भ कर दी जिससे जातिवाद जैसी विकृत मानसिकता को प्रोत्साहन मिला।

शंका 9 : अगर ब्राह्मण का पुत्र गुण कर्म स्वभाव से रहित हो तो क्या वह शूद्र कहलायेगा और अगर शूद्र गुण कर्म और स्वभाव से गुणवान हो तो क्या वह ब्राह्मण कहलायेगा?

समाधान : वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण का पुत्र विद्या प्राप्ति में असफल रहने पर शूद्र कहलायेगा वैसे ही शूद्र का पुत्र भी विद्या प्राप्ति के उपरांत अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य वर्ण को प्राप्त कर सकता है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था विशुद्ध रूप से गुणवत्ता पर आधारित है। जिस प्रकार शिक्षा पूरी करने के बाद आज उपाधियाँ दी जाती हैं, उसी प्रकार वैदिक व्यवस्था में यज्ञोपवीत दिया जाता था। प्रत्येक वर्ण के लिए निर्धारित कर्तव्य कर्म का पालन व निर्वहन न करने पर यज्ञोपवीत वापस लेने का भी प्रावधान था।

वैदिक इतिहास में वर्ण परिवर्तन के अनेक प्रमाण उपस्थित हैं, जैसे –

(1) ऐतरेय ऋषि दास अथवा अपराधी के पुत्र थे, परन्तु अपने गुणों से उच्च कोटि के ब्राह्मण बने और उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेय उपनिषद की रचना की थी। ऋग्वेद को समझने के लिए ऐतरेय ब्राह्मण अतिशय आवश्यक माना जाता है।

(2) ऐलूष ऋषि दासी पुत्र थे, जुआरी और हीन चरित्र भी थे, परन्तु बाद में उन्होंने अध्ययन किया और ऋग्वेद पर अनुसन्धान करके अनेक आविष्कार किये। ऋषियों ने उन्हें आमंत्रित कर के आचार्य पद पर आसीन किया था। -ऐतरेय ब्राह्मण 2/19

(3) सत्यकाम जाबाल गणिका (वेश्या) के पुत्र थे परन्तु वे ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए। -घान्दोग्योपनिषद 4/4/4

(4) राजा दक्ष के पुत्र पृषध शूद्र हो गए थे, प्रायश्चित स्वरूप तपस्या करके उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। -विष्णु पुराण 4/1/14

अगर उत्तर रामायण की मिथ्या प्रक्षिप्त कथा के अनुसार शूद्रों के लिए तपस्या करना मना होता तो पृषध ये कैसे कर पाए?

(5) राजा नेदिष्ट के पुत्र नाभाग वैश्य हुए, पुनः इनके कई पुत्रों ने क्षत्रिय वर्ण अपनाया। –विष्णु पुराण 4/1/13

(6) धृष्ट नाभाग के पुत्र थे परन्तु ब्राह्मण हुए और उनके पुत्र ने क्षत्रिय वर्ण अपनाया। –विष्णु पुराण 4/2/2

(7) आगे उन्ही के वंश में पुनः कुछ ब्राह्मण हुए। –विष्णु पुराण 4/2/2

(8) भागवत के अनुसार राजपुत्र अग्निवेश्य ब्राह्मण हुए।

(9) विष्णुपुराण और भागवत के अनुसार रथोतर क्षत्रिय से ब्राह्मण बने थे।

(10) हारित क्षत्रिय पुत्र से ब्राह्मण हुए थे। –विष्णु पुराण 4/3/5

(11) क्षत्रियकुल में जन्में शौनक ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। वायु, विष्णु और हरिवंशपुराण कहते हैं कि शौनक ऋषि के पुत्र कर्म भेद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के हुए। इसी प्रकार गृत्समद, गृत्समति और वीतहव्य के उदाहरण हैं। –विष्णु पुराण 4/8/1

(12) मातंग चांडालपुत्र से ब्राह्मण बने थे। –महाभारत राजधर्म अध्याय 27

(13) ऋषि पुलस्त्य का पौत्र रावण अपने कर्मों से राक्षस बना था।

(14) राजा रघु का पुत्र प्रवृद्ध राक्षस हुआ था।

(15) त्रिशंकु राजा होते हुए भी कर्मों से चांडाल बन गए थे।

(16) विश्वामित्र के पुत्रों ने शूद्र वर्ण अपनाया था, विश्वामित्र स्वयं क्षत्रिय थे परन्तु बाद उन्होंने ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था।

(17) विदुर दासी पुत्र थे तथापि वे ब्राह्मण हुए और उन्होंने हस्तिनापुर साम्राज्य का मंत्री पद सुशोभित किया था।

इन उदाहरणों से यही सिद्ध होता है कि वैदिक वर्ण व्यवस्था में वर्ण परिवर्तन का प्रावधान था एवं जन्म से किसी का भी वर्ण निर्धारित नहीं होता था।

मनुस्मृति 10/65 में भी वर्ण परिवर्तन का स्पष्ट आदेश है।

शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शुद्र हो जाता है, इसी प्रकार से क्षत्रियों और वैश्यों की संतानों के वर्ण भी बदल जाते हैं। अथवा चारों वर्णों के व्यक्ति अपने अपने कार्यों को बदल कर अपने अपने वर्ण बदल सकते हैं।

शूद्र भी यदि जितेन्द्रिय होकर पवित्र कर्मों के अनुष्ठान से अपने अंतः करण को शुद्ध बना लेता है, वह द्विज ब्राह्मण की भाँति सेव्य होता है। यह साक्षात् ब्रह्मा जी का कथन है। –महाभारत दानधर्म अध्याय 143/47

देवी! इन्हीं शुभ कर्मों और आचरणों से शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है और वैश्य क्षत्रियत्व को। –महाभारत दानधर्म अध्याय 143/26

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
वेद पाठी भवेद् विप्रः ब्रह्म जानेति ब्राह्मणः।।

अर्थात् जन्म से सब शूद्र होते हैं, संस्कारों से द्विज होते हैं। वेद पढ़ कर विप्र होते हैं और ब्रह्म ज्ञान से ब्राह्मण होते हैं। –नरसिंह तापनि उपनिषद्

शुभ संस्कार तथा वेदाध्ययन युक्त शूद्र भी ब्राह्मण हो जाता है और दुराचारी ब्राह्मण ब्राह्मणत्व को त्यागकर शूद्र बन जाता है।–ब्रह्म पुराण 223/43

जिस में सत्य, दान, द्रोह का अभाव, क्रूरता का अभाव, लज्जा, दया और तप यह सब सद्‌गुण देखे जाते हैं वह ब्राह्मण है।

–महाभारत शांतिपर्व अध्याय 88/4

ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न होना, संस्कार, वेद श्रवण, ब्राह्मण पिता की संतान होना, यह ब्राह्मणत्व के कारण नहीं हैं, बल्कि सदाचार से ही ब्राह्मण बनता है।–महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय 143/51

कोई मनुष्य कुल, जाति और क्रिया के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि चंडाल भी सदाचारी हो तो वह ब्राह्मण हो सकता है।

–महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय 226/15

शंका 10 : क्या वेदों के अनुसार शिल्प विद्या और उसे करने वालों को नीचा माना गया है?

समाधान : वैदिक काल में शिल्प विद्या को सभी वर्णों के लोग अपनी-अपनी आवश्यकता अनुसार करते थे। कालांतर में शिल्प विद्या केवल शूद्र वर्ण तक सीमित हो गई और अज्ञानता के कारण जैसे शूद्रों को नीचा माना जाने लगा वैसे ही शिल्प विद्या को भी नीचा माना जाने लगा। जैसे यजुर्वेद में वेदों में विद्वानों (ब्राह्मणों) से लेकर शूद्रों तक सभी को शिल्प आदि कार्य करने का स्पष्ट आदेश है एवं शिल्पी का सत्कार करने की प्रेरणा भी दी गई है। जैसे विद्वान् लोग अनेक धातु एवं साधन विशेषों से वस्त्रादि को बना के अपने कुटुंब का पालन करते हैं तथा पदार्थों के मेल रूप यज्ञ को कर पथ्य औषधि रूप पदार्थों को देके रोगों से छुड़ाते और शिल्प क्रिया के प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं, वैसे अन्य लोग भी किया करें। –यजुर्वेद 19/80

हे बुद्धिमानो, जो वाहनों को बनाने और चलाने में चतुर और शिल्पी जन होवें उनका ग्रहण और सत्कार करके शिल्प विद्या की उन्नति करो।

–ऋग्वेद 4/136/2

ऐसा ही आलंकारिक वर्णन ऋग्वेद के 1/20/1-4 एवं ऋग्वेद 1/110/4 में भी मिलता है। जातिवाद के पोषक अज्ञानी लोगों को यह सोचना चाहिए कि समाज में लौकिक व्यवहारों की सिद्धि के लिए एवं दरिद्रता के नाश के लिए शिल्प विद्या और उसको संरक्षण देने वालों का उचित सम्मान करना चाहिए। इसी में सकल मानव जाति की भलाई है।

शंका 11 : जातिभेद की उत्पत्ति कैसे हुई और जातिभेद से क्या क्या हानियां हुई?

समाधान : जातिभेद की उत्पत्ति के मुख्य कारण कुछ अनार्य जातियों में उन्नत जाति कहलाने की इच्छा, कुछ समाज सुधारकों द्वारा पंथ आदि की स्थापना करना और जिसका बाद में एक विशेष जाति के रूप में परिवर्तित होना- जैसे लिंगायत अथवा बिशनोई। व्यवसाय भेद के कारण- जैसे ग्वालों को बाद में अहीर कहा जाने लगा। स्थान भेद के कारण- जैसे कान्य कुब्ज ब्राह्मण कन्नौज से निकले। रीति रिवाज का भेद, पौराणिक काल में धर्माचार्यों की अज्ञानता जिसके कारण रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि ग्रंथों में मिलावट कर धर्म ग्रंथों को जातिवाद के समर्थक के रूप में परिवर्तित करना था।

पूर्वकाल में जातिभेद के कारण समाज को भयानक हानि उठानी पड़ी थी और अगर इसी प्रकार से चलता रहा तो आगे भी उठानी पड़ेगी। जातिभेद को मानने वाला व्यक्ति अपनी जाति के बाहर के व्यक्ति के हित एवं उससे मैत्री करने के विषय में कभी नहीं सोचता और उसकी मानसिकता अनुदार ही बनी रहती है। इस मानसिकता के चलते समाज में एकता एवं संगठन बनने के स्थान पर शत्रुता एवं आपसी फूट अधिक बढ़ती जाती है।

R.C.Dutt महोदय के अनुसार 'हिन्दू समाज में जातिभेद के कारण बहुत सी हानियाँ हुई हैं, पर उसका सबसे बुरा और शोकजनक परिणाम यह हुआ कि जहाँ एकता और समभाव होना चाहिये था, वहाँ विरोध और मतभेद उत्पन्न हो गया। जहाँ प्रजा में बल और जीवन होना चाहिये था, वहाँ निर्बलता और मौत का वास है।'- (Civilization in Ancient India)

सामाजिक एकता के भंग होने से विपरीत परिस्थितियों में जब शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण करता था, तब साधन सम्पन्न होते हुए भी शत्रुओं की आसानी से जीत हो जाती थी। जातिवाद के कारण देश को शताब्दियों तक गुलाम रहना पड़ा। जातिवाद के चलते करोड़ों हिन्दू जाति के सदस्य धर्मान्तरित होकर विधर्मी बन गये। यह किसकी हानि थी? केवल और केवल हिन्दू समाज की हानि थी।

आशा है पाठकगण वेदों को जातिवाद का पोषक न मानकर उन्हें शूद्रों के प्रति उचित सम्मान देने वाले और जातिवाद नहीं अपितु वर्ण व्यवस्था का पोषक मानने में अब कोई आपत्ति नहीं समझेंगे और जातिवाद से होने वाली हानियों को समझकर उसका हर सम्भव त्याग करेंगे।

3 वेदों में नारी

नारी जाति के विषय में वेदों को लेकर अनेक भ्रांतियां हैं। भारतीय समाज में वेदों पर यह दोषारोपण किया जाता है की वेदों के कारण नारी जाति को सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा, अशिक्षा, समाज में नीचा स्थान, विधवा का अभिशाप, नवजात कन्या की हत्या आदि अत्याचार हुए हैं। किसी ने यह प्रचलित कर दिया गया था की जो नारी वेद मंत्र को सुन ले तो उसके कानों में गर्म सीसा डाल देना चाहिए और जो वेदमंत्र को बोल दे तो उसकी जिव्हा को अलग कर देना चाहिए। कोई नारी को पैर की जूती कहने में अपना बड़प्पन समझता था तो कोई उसे ताड़न की अधिकारी बताने में समझता था। इतिहास इस बात का साक्षी हैं की नारी की अपमानजनक स्थिति पश्चिम से लेकर पूर्व तक के सभी देशों के इतिहास में देखने को मिलती हैं। इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह हैं कि वेद इन अत्याचारों में से एक का भी समर्थन नहीं करते अपितु वेदों में नारी को इतना उच्च स्थान प्राप्त है कि विश्व किसी भी धर्म पुस्तक में उसका अंश भर भी देखने को नहीं मिलता। कुछ लेखकों द्वारा वेदों में भी नारी की स्थिति को निकृष्ट रूप में दर्शाया गया है।

शंका 1 : वेदों में नारी के कर्तव्यों एवं अधिकारों के विषय में क्या कहा गया है?

समाधान : वेदों में नारी की स्थिति अत्यंत गौरवास्पद वर्णित हुई है। वेद की नारियां देवी हैं, विदुषी हैं, प्रकाश से परिपूर्ण हैं, वीरांगना हैं, वीरों की जननी हैं, आदर्श माता हैं, कर्तव्यनिष्ट धर्मपत्नी हैं, सद्गृहणी हैं, सम्राज्ञी हैं, संतान की प्रथम शिक्षिका हैं, अध्यापिका बनकर कन्याओं को सदाचार और ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देनेवाली हैं, उपदेशिका बनकर सबको सन्मार्ग बतानेवाली हैं, मर्यादाओं का पालन करनेवाली हैं, जग में सत्य और प्रेम का प्रकाश फैलानेवाली हैं। यदि गुण-कर्मानुसार क्षत्रिया हैं, तो धनुर्विद्या में निष्णात होकर राष्ट्र रक्षा में भाग लेती हैं। यदि वैश्य के गुण कर्म हैं उच्चकोटि का पशुपालन, व्यापार आदि में योगदान देती हैं और शिल्पविद्या की भी उन्नति करती हैं। वेदों की नारी पूज्य हैं, स्तुति योग्य हैं, रमणीय हैं, आह्वान-योग्य हैं, सुशील हैं, बहुश्रुत हैं, यशोमयी हैं।

पुरुष और नारी के संबंधों के विषय में वेदों में आलंकारिक वर्णन हैं। पुरुष धुलोक हैं तो नारी पृथ्वी हैं दोनों के सामंजस्य से हो सौर जगत बना है,

पुरुष साम हैं तो नारी ऋक् हैं दोनों के सामंजस्य से ही सृष्टि का सामगान होता हैं,पुरुष वीणा-दंड हैं तो नारी वीणा तन्त्री हैं, दोनों के सामंजस्य से ही जीवन के संगीत की झंकार निस्सृत होती हैं, पुरुष नदी का एक तट हैं, तो नारी दूसरा तट हैं, दोनों के बीच में ही वैयक्ति और सामाजिक विकास की धारा बहती हैं। पुरुष दिन हैं, तो नारी रजनी हैं। पुरुष प्रभात हैं तो नारी उषा हैं। पुरुष मेघ हैं तो नारी विद्युत हैं। पुरुष अग्नि हैं, तो नारी ज्वाला हैं। पुरुष आदित्य हैं तो नारी प्रभा हैं। पुरुष तरु हैं, तो नारी लता हैं। पुरुष फूल हैं, तो नारी पंखुड़ी हैं। पुरुष धर्म हैं, तो नारी धीरता हैं। पुरुष सत्य हैं, तो नारी श्रद्धा हैं। पुरुष कर्म हैं, तो नारी विद्या हैं। पुरुष सत्व हैं, तो नारी सेवा हैं। पुरुष स्वाभिमान हैं, तो नारी क्षमा हैं। दोनों के सामंजस्य में ही पूर्णता हैं। विवाह इसी सामंजस्य का एक प्रतीक हैं।

वेदों में नारी के दो जन्म माने गए हैं। एक शरीरतः और एक विद्यातः। विद्यातः जन्म होने पर नारी का पदार्पण जैसे ही विवाह-वेदी पर होता है, वैसे ही उसका कुल, व्रत, यज्ञ आदि सब-कुछ बदल जाता है। उसके नाम, काम, रिश्ते-नाते सब बदल जाते हैं। उसके दो कुल हो जाते हैं। एक पितृकुल और एक पति कुल। वह दोनों कुलों को जोड़ने वाली कड़ी हैं। पितृकुल में नारी कन्या, पुत्री, भगिनी, ननद, बुआ हैं तो पतिकुल में नारी वधू, गृहिणी, पत्नी, भार्या, जाया, दारा, जननी, अम्बा, माता, श्वश्रु हैं। वेदों में इन सभी दायित्वों के अनुरूप नारी के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन हैं। वैदिक मन्त्रों में नारी को उसके कर्तव्यों का पालन करने की प्रेरणा देते हुए महान बनने की प्रेरणा दी हैं।

शंका 2 : स्वामी दयानंद के नारी जाति के उत्थान के विषय में क्या विचार हैं?

समाधान : स्वामी दयानंद नारी जाति को न केवल शिक्षित करने के पक्षधर थे अपितु नारी जाति को गृह स्वामिनी से लेकर प्राचीनकाल की महान विदुषी गार्गी और मैत्रयी के समान विद्वान बनाना चाहते थे। स्वामी जी के अनुसार नारी ताड़न की नहीं अपितु सम्मान करने योग्य हैं।

सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानंद क्रान्तिकारी उद्घोष करते हुए लिखते हैं 'जन्म से पांचवें वर्ष तक के बालकों को माता तथा छह से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और नौवें के प्रारंभ में द्विज अपने संतानों का उपनयन करके जहाँ पूर्ण विद्वान तथा पूर्ण विदुषी स्त्री, शिक्षा और विद्या-दान करने वाली हों वहां लड़के तथा लड़कियों को भेज दे।'

लड़कों को लड़कों की तथा लड़कियों को लड़कियों की शाला में भेज देवें, लड़के तथा लड़कियों की पाठशालाएं एक दूसरे से कम से कम दो कोस

की दूरी पर हो। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक अथवा भृत्य, अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री तथा पुरुषों की पाठशाला में सब पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पाए। जब तक वे ब्रह्मचारिणी रहे, तब तक पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकांत सेवन, भाषण, विषय-कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहे।

इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सकें, पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दंडनीय हो ।

स्वामी दयानंद नारी शिक्षा के महत्व को यथार्थ में समझते थे क्यूंकि माता ही शिशु की प्रथम गुरु होती हैं इसलिए नारी का शिक्षित होना अत्यंत महत्व पूर्ण होता है। स्वामी जी शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे परन्तु सहशिक्षा के पक्षधर नहीं थे इसलिए उन्होंने लड़के लड़कियों की पाठशाला को न केवल अलग होने का सन्देश दिया है अपितु उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षकों के लिए भी यही नियम बताया था कि केवल पुरुष अध्यापक लड़कों को पढ़ाये एवं स्त्री अध्यापिका लड़कियों को पढ़ाये। देखा जाये तो यह नियम समाज में होने वाले दुराचार, बलात्कार, शारीरिक शोषण, चरित्रहीनता आदि से युवक-युवतियों की रक्षा कर उन्हें राष्ट्र के लिए तैयार करने की दूरगामी सोच है। स्वामी जी दुराचार की भावना को मनुष्य के लिए विनाशकारी मानते थे इसीलिए उनका मानना था की अगर माता और पिता का चरित्र उज्ज्वल होगा तभी संतान भी सुयोग्य एवं चरित्रवान होगी। स्वामी जी के चिंतन में अशिक्षित रखने वाले माता-पिता को राजा द्वारा दण्डित करना प्रशंसनीय हैं क्यूंकि अगर देश की अगली पीढ़ी का विकास उचित प्रकार से होगा और उनकी नींव विधिवत रूप से रखी जाएगी तभी वे समाज के लिए जिम्मेदार नागरिक बनेंगे। जिसकी नींव में ही दोष होगा वह समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का कैसे निर्वहन कर पायेगा। आज से 150 वर्ष पूर्व स्वामी दयानंद के विचारों से शिक्षा चेतना का प्रचार हुआ जिसके कारण देश में हजारों शिक्षण संस्थाएं खुलीं, अनेक विद्यालय, गुरुकुल आदि प्रारम्भ हुए जिससे शिक्षा क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। यह स्वामी दयानंद के चिंतन का परिणाम था।

शंका 3 : क्या वेद नारी जाति को शिक्षा का अधिकार देते हैं?

समाधान : स्वामी दयानंद ने स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः स्त्री और शूद्र न पढ़ें

यह श्रुति हैं को नकारते हुए वैदिक काल की गार्गी, सुलभा, मैत्रयी, कात्यायनी आदि सुशिक्षित स्त्रियों का वर्णन किया जो ऋषि- मुनिओं की शंकाओं का समाधान करती थी। उनका प्रयास नारी जाति को शिक्षित, स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बनाने का था इसीलिए वे नारी को शिक्षा दिलवाने के पक्षधर थे। वेदों में नारी को शिक्षित करने के लिए अनेक मंत्र हैं जैसे-

1. ऋग्वेद 6/44/18 का भाष्य करते हुए स्वामी दयानंद लिखते हैं, राजा ऐसा यत्न करे जिससे सब बालक और कन्यायें ब्रह्मचर्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हो सत्य, न्याय और धर्म का निरंतर सेवन करे।
2. राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए - यजुर्वेद 10/7
3. विद्वानों को यही योग्यता हैं की सब कुमार और कुमारियों को पण्डित बनावे, जिससे सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हों - ऋग्वेद 3/1/23
4. जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करे और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें -ऋग्वेद 2/41/16

इस प्रकार यजुर्वेद एवं ऋग्वेद में भी नारी को शिक्षा का अधिकार दिया गया है। इतने स्पष्ट प्रमाण होने के बाद भी मध्य काल में नारी जाति को शिक्षा से वंचित रखना न केवल उनपर अत्याचार था अपितु वेदों के प्रचलन से सामान्य समाज की अनभिज्ञता का प्रदर्शन भी था।

शंका 4 : क्या वेद सती प्रथा का समर्थन करते हैं?

समाधान : 1875 में स्वामी दयानंद ने पूना में दिए गए अपने प्रवचन में स्पष्ट घोषणा की थी की 'सती होने के लिए वेद की आज्ञा नहीं हैं'।

वैदिक काल के इतिहास में कहीं भी सती होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। महाभारत में माद्री के पाण्डु के मृत शरीर के साथ आत्मदाह का उल्लेख है जिसका सती प्रथा से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। मध्य काल में जब अवनति का दौर चला तब नारी जाति की दुर्गति आरम्भ हुई। सती प्रथा उसी काल की देन हैं।

जहाँ तक वेदों का प्रश्न है सायण ने अथर्ववेद के मंत्र 18/3/1 में सती प्रथा दर्शाने का प्रयास किया है। सायण के अनुसार यहाँ पर वेद नारी को आदेश दे रहे हैं कि यह नारी अनादीशिष्टाचारसिद्ध, स्मृति पुराण आदि में प्रसिद्ध सहमरणरूप धर्म का परि पालन करती हुई पतिलोक को अर्थात् जिस लोक में पति गया है उस स्वर्गलोक को वरण करना चाहती हुई, तुझ मृत के पास सहमरण के लिए पहुँच रही है। अगले जन्म में तू इसे पुत्र-पौत्रादि प्रजा

और धन प्रदान करना। अगले मंत्र में सायण कहते हैं अगले जन्म में भी उसे वही पति मिलेगा। इसलिए ऐसा कहा गया है।

यहाँ पर सायण के अर्थों को देखकर अनेक शंका उत्पन्न होती हैं। इस मंत्र का सही अर्थ इस प्रकार है। यह नारी पुरातन धर्म का पालन करती हुई पतिगृह को पसंद करती हुई। हे मरण धर्मा मनुष्य, तुझ मृत के समीप नीचे भूमि पर बैठी हुई है। उसे संतान और सम्पत्ति यहाँ सौप। अर्थात पति की मृत्यु होने के पश्चात पत्नी का उसकी सम्पत्ति और संतान पर अधिकार हैं। हमारे कथन की पुष्टि अगले ही मंत्र में स्वयं सायण करते हुए कहते हैं 'हे मृत पति की धर्मपत्नी ! तू मृत के पास से उठकर जीवलोक में आ, तू इस निष्प्राण पति के पास क्यों पड़ी हुई हैं? पाणीग्रहणकर्ता पति से तू संतान पा चुकी हैं, उसका पालन पोषण कर।' -अथर्ववेद 18/3/2

सायण के इस अर्थ से हमें कोई शंका नहीं हैं। दोनों मन्त्रों में विरोधाभास होना हमारे पक्ष को भी सिद्ध करता है।

मध्यकाल के बंगाल के कुछ पंडितो ने ऋग्वेद 10/18/7 में अग्रे के स्थान पर अग्ने पढ़कर सती प्रथा को वैदिक सिद्ध करना चाहा था, परन्तु यह केवल असत्य कथन है। इस मंत्र में वधू को अग्नि नहीं अपितु अग्रे अर्थात गृह में प्रवेश के समय आगे चलने को कहा गया है।

इस प्रकार से वेद के मन्त्रों के असत्य अर्थ निकाल कर सती प्रथा को वैदिक सिद्ध किया गया था। धन्य हैं आधुनिक भारत के विचारक राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद जिनके प्रयासों से सती प्रथा का प्रचलन बंद हुआ।

शंका 5 : क्या नारी जाति को वेदाध्ययन करने का अधिकार नहीं है?

समाधान : कुछ अज्ञानी लोगों ने यह प्रचलित कर दिया हैं कि नारी और शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है परन्तु आज तक ऐसा मानने वाले वेद मन्त्रों में एक भी मंत्र इस कथन के समर्थन में नहीं दिखा पाये हैं। इसके विपरीत वेदों में नारी को वेदाध्ययन करने का स्पष्ट सन्देश हैं।

ऋग्वेद 10/191/3 में ईश्वर सन्देश देते हुए कह रहे हैं कि हे समस्त नर नारियो! तुम्हारे लिए ये मंत्र समान रूप से दिए गए हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो। मैं तुम्हें समान रूप से ग्रंथों का उपदेश करता हूँ।

अथर्ववेद 11/6/18 में स्पष्ट सन्देश हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन कर कन्या वर का ग्रहण करे। यहाँ पर, ब्रह्मचर्य का अर्थ हैं ब्रह्म अर्थात वेद में चर अर्थात् गमन, ज्ञान या प्राप्ति करना।

अथर्ववेद 14/1/64 में नववधू को सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया गया है

कि हे वधू! तेरे आगे, पीछे, मध्य में, अंत में सर्वत्र वेद विषयक ज्ञान रहे। और वेदज्ञान को प्राप्त करके तदनुसार तुम अपना सारा जीवन बनाओ।

इसी प्रकार से यजुर्वेद 14/2 में स्त्री को उपदेश है कि 'इमा ब्रह्मा पीपिहि अर्थात् सौभाग्य की प्राप्ति के लिए वेदमंत्रों के अमृत का बार-बार अच्छी प्रकार से पान कर।'

ऋग्वेद 1/1/5 में स्वामी दयानंद लिखते हैं जो कन्या 24 वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक अंग-उपांग सहित वेद विद्याओं को पढ़ती हैं, वे मनुष्य जाति को सुशोभित करने वाली होती है।

यजुर्वेद 14/14के भाष्य में स्वामी दयानंद लिखते हैं यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि से कुमार और कुमारियों को द्विज बनाएं तो वे शीघ्र विद्वान हो जाएं।

ऋग्वेद 1/71/21 के भाष्य में स्वामी दयानंद लिखते हैं जिस प्रकार वैश्य लोग धर्म धारण करके धनोपार्जन करते हैं, उसी प्रकार कन्याओं को चाहिए कि विवाह से पहले शुभ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके विदुषी अध्यापिकाओं को प्राप्त करके सुशिक्षा और (वेद) विद्या संचय करके विवाह करें।

ऋग्वेद 1/119/5 के भाष्य में स्वामी दयानंद लिखते हैं जैसे ब्रह्मचर्य करके यौवनावस्था को प्राप्त हुई विदुषी कुमारी कन्या अपने पति को पा निरंतर उसकी सेवा करती हैं और जैसे ब्रह्मचर्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनंदित होता हैं, वैसा ही सभा और सेनापति सदा होवें। ऐसा ही आशय ऋग्वेद 5/32/11 में मिलता है।

महाभारत आदिपर्व 131/10 में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जिनका धन समान हो और वेदशास्त्रविषयक ज्ञान समान हो, उनमें मित्रता और विवाह आदि हो सकते हैं ,बलवान और सर्वथा निर्बल व्यक्तियों में नहीं।

वेदों में स्त्री को विदुषी बनने का और अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार गुणशाली वर चुनने का अधिकार दिया गया है। इस प्रकार से वेदों में अनेक मंत्र स्त्रियों को वेदाध्ययन की प्रेरणा देते हैं।

वेदों में अनेक सूक्त हैं जैसे ऋग्वेद 10/134, 10/40, 8/91, 10/95,10/107, 10/109, 10/154, 10/159,5/28 आदि जिनकी ऋषिकाएँ गोधा,घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत्, निषत्, रोमशा आदि हुई हैं। यह ऋषिकाएँ न केवल वेदों को पढ़ती थी, उनके रहस्य को समझती थी अपितु उनका प्रचार भी करती थी। इन ऋषिकाओं की सूची बृहद देवता अध्याय 24/84-86 में मिलती हैं। ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी भी कहा जाता था और इनका नियमपूर्वक उपनयन, वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, गायत्री मंत्र का उपदेश प्रदान आदि होता था।

शंका 6 : क्या नारी जाति को यज्ञ में भाग लेने का अधिकार नहीं है?

समाधान : वैदिक काल में नारी जाति को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण अधिकार था जिसे मध्य काल में वर्जित कर दिया गया था। कुछ ग्रंथों में इस बात को प्रचलित कर दिया गया की नारी का स्थान यज्ञवेदी से बाहर हैं अथवा कन्या और युवती अग्निहोत्र की होता नहीं बन सकती। वेद परम प्रमाण हैं इसलिए इस शंका का समाधान भी वेद भली प्रकार से करते हैं। वेद नारी जाति को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण अधिकार देते हैं।

ऋग्वेद 8/31/5-8 में कहा गया है कि जो पति-पत्नी समान मनवाले होकर यज्ञ करते हैं उन्हें अन्न, पुष्प, हिरण्य आदि की कमी नहीं रहती हैं।

ऋग्वेद 10/85/47 में कहा गया हैं कि विवाह यज्ञ में वर वधू उच्चारण करते हुए एक दूसरे का हृदय-स्पर्श करते हैं।

ऋग्वेद 1/72/5 में कहा गया हैं कि विद्वान लोग पत्नी सहित यज्ञ में बैठते हैं और नमस्करणीय (नमन करने योग्य जैसे ईश्वर, विद्वान आदि) को नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार यजुर्वेद 3/44 और अथर्ववेद 3/28/6 में भी यज्ञ में नारी के भाग लेने के स्पष्ट प्रमाण हैं।

शंका 7 : क्या नारी को यज्ञ में ब्रह्मा बनने का अधिकार है?

समाधान : यज्ञ में ब्रह्मा का पद सबसे ऊँचा होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों विद्याओं के प्रतिपादक वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा बन सकता है। शतपथ ब्राह्मण 11/5/7 में इसी तथ्य का समर्थन किया गया है। गोपथ ब्राह्मण 1/3 के अनुसार जो सबसे अधिक परमेश्वर और वेदों का ज्ञाता हो उसे ब्रह्मा बनाना चाहिए।

ऋग्वेद 8/33 में नारी को कहा गया है कि स्त्री ब्रह्मा बभूविथ अर्थात् इस प्रकार से उचित सभ्यता के नियमों का पालन करती हुई नारी निश्चित रूप से ब्रह्मा के पद को पाने योग्य बन सकती है।

जब वेदों में स्पष्ट रूप से नारी जाति को यज्ञ में ब्रह्मा बनने का आदेश है तो अन्य ग्रंथों से इसके विरोध में अगर कोई प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है तो वह अमान्य है क्यूंकि मनुस्मृति 2/13 में लिखा है कि धर्म को जानने की इच्छा रखने वालों के लिए वेद ही परम प्रमाण हैं।

शंका 8 : क्या वेदों में दहेज देने की प्रथा का विधान है, जिसके कारण नारी जाति पर अनेक अत्याचार हो रहे हैं?

समाधान : वेदों में पुत्री को दहेज से अलंकृत करने का सन्देश दिया गया है परन्तु यहाँ पर दहेज का वास्तिक अर्थ उससे भिन्न है, जैसा प्रायः प्रचलित

हैं। अथर्ववेद 14/1/8 के मंत्र में पिता द्वारा कन्या को स्तुति वृत्ति वाला बना देना ही पुत्री के लिए सच्चा दहेज है। यहाँ पर स्तुति वृति का भाव है पुत्री सदा दूसरों के गुणों की प्रशंसा करने वाली हो, किसी के भी अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देने वाली हो अर्थात् परनिंदा नहीं करने वाली हो एवं उसके गहने उसकी भद्रता, उसका शिष्टाचार और उसकी प्रभु के गुणगान करने की वृत्ति हो।

यहाँ पर पुत्री को गुणों से सुशोभित करना एक पिता के लिए सच्चा दहेज देने के समान हैं। कालांतर में कुछ लोभी लोगो ने दहेज का अर्थ धन समझ लिया जिसके कारण उनका लालच बढ़ता गया एवं उसका परिणाम नारी जाति पर अत्याचार के रूप में आया है, जो निश्चित रूप से सभ्य समाज के माथे पर कलंक के समान है।

शंका 9 : क्या वेदों में केवल पुत्र की कामना करी गई हैं?

समाधान : आज समाज में कन्या भ्रूण हत्या का महापाप प्रचलित हो गया है जिसका मुख्य कारण नारी जाति का समाज में उचित सम्मान न होना, धन आदि के रूप में दहेज जैसी कुरीतियों का होना, समाज में बलात्कार जैसी घटनाओं का बढ़ना, चरित्र दोष आदि हैं जिससे नारी जाति की रक्षा कर पाना कठिन हो गया है। ऐसे में समाज में पुत्र की कामना अधिक बलवती हो उठी हैं एवं पुत्री को बोझ समझा जाने लगा है। कुछ लोगो ने यह कुतर्क देना प्रारम्भ कर दिया है कि वेद नारी को हीन दृष्टि से देखते हैं और वेदों में सर्वत्र पुत्र ही मांगे गए हैं। सत्य यह है कि वेदों में पत्नी को उषा के सामान प्रकाशवती, वीरांगना, वीरप्रसवा, विद्या अलंकृत, स्नेहमयी माँ, पतिव्रता (पति का वरण करने वाली), अन्नपूर्णा, सदगृहिणी और सम्राज्ञी आदि से संबोधित किया गया है जो निश्चित रूप से नारी जाति को उचित सम्मान प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए वेदों में नारी जाति की यशगाथा के लिए कुछ वेद मंत्र प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. मेरे पुत्र शत्रु हन्ता हो और पुत्री भी तेजस्विनी हो। -ऋग्वेद 10/159/3
2. यज्ञ करने वाले पति-पत्नी और कुमारियों वाले होते हैं।-ऋग्वेद 8/31/8
3. प्रति प्रहर हमारी रक्षा करने वाला पूषा परमेश्वर हमें कन्याओं का भागी बनायें अर्थात् कन्या प्रदान करे। -ऋग्वेद 9/67/10
4. हमारे राष्ट्र में विजयशील सभ्य वीर युवक पैदा हों, वहां साथ ही बुद्धिमती नारियों के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना हैं। -यजुर्वेद 22/22
5. जैसा यश कन्या में होता है वैसा यश मुझे प्राप्त हो।-अथर्ववेद 10/3/20

इस प्रकार से नारी जाति की वेदों में महिमामंडन है, नाकि उन्हें अवांछनीय मान कर केवल पुत्रों की कामना की गई हैं।

शंका 10 : क्या वेदों में बहु-विवाह आदि का विधान है?

समाधान : वेदों के विषय में एक भ्रम यह भी फैलाया गया है कि वेदों में बहुविवाह की अनुमति दी गयी है।

वेदों में स्पष्ट रूप से एक ही पत्नी होने का विधान बताया गया है।

ऋग्वेद 10/85 को विवाह सूक्त के नाम से जाना चाहता है। इस सूक्त के मंत्र 42 में कहा गया है कि तुम दोनों इस संसार व गृहस्थ आश्रम में सुख पूर्वक निवास करो। तुम्हारा कभी परस्पर वियोग न हो और सदा प्रसन्नतापूर्वक अपने घर में रहो। यहाँ पर हर मंत्र में तुम दोनों अर्थात पति और पत्नी आया है। अगर बहुपत्नी का सन्देश वेदों में होता तो तुम सब आता।

ऋग्वेद 10/85/47 में हम दोनों (वर-वधू) सब विद्वानों के सम्मुख घोषणा करते हैं कि हम दोनों के ह्रदय जल के समान शांत और परस्पर मिले हुए रहेंगे।

अथर्ववेद 7/35/4 में पति पत्नी के मुख से कहलाया गया है कि तुम मुझे अपने ह्रदय में बैठा लो, हम दोनों का मन एक ही हो जाये।

अथर्ववेद 7/38/4 पत्नी कहती है तुम केवल मेरे बनकर रहो और अन्य स्त्रियों का कभी कीर्तन व व्यर्थ प्रशंसा आदि भी न करो।

ऋग्वेद 10/101/11 में बहु विवाह की निंदा करते हुए वेद कहते है जिस प्रकार रथ का घोड़ा दोनों धुराओं के मध्य में दबा हुआ चलता है वैसे ही एक समय में दो स्त्रियाँ करनेवाला पति दबा हुआ होता है अर्थात परतंत्र हो जाता है इसलिए एक समय दो व अधिक पत्नियाँ करना उचित नहीं है।

इस प्रकार वेदों में बहुविवाह के विरुद्ध स्पष्ट उपदेश हैं। वेदों की अलंकारिक भाषा को समझने में गलती करने से इस प्रकार की भ्रान्ति होती हैं।

शंका 11 : क्या वेद बाल विवाह का समर्थन करते हैं?

समाधान : हमारे देश पर विशेषकर मुस्लिम आक्रमण के पश्चात बाल विवाह की कुरीति को समाज ने अपना लिया जिससे न केवल ब्रह्मचर्य आश्रम लुप्त हो गया बल्कि शरीर की सही ढंग से विकास न होने के कारण एवं छोटी उम्र में माता पिता बन जाने से संतान भी कमजोर पैदा होती गयी, जिससे हिन्दू समाज दुर्बल से दुर्बल होता गया।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त के 11/5/18 मंत्र में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य (सादगी, संयम और तपस्या) का जीवन बिता कर कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। इस मंत्र में नारी को युवा पति से ही विवाह करने का प्रावधान बताया गया हैं जिससे बाल विवाह करने की मनाही स्पष्ट सिद्ध होती हैं।

ऋग्वेद 10/183 सूक्त में वर वधू मिलकर संतान उत्पन्न करने की बात कह रहे हैं। वधु वर से मिलकर कह रही है कि तो पुत्र काम है अर्थात् तू पुत्र

चाहता है वर-वधू से कहता है कि तू पुत्र कामा है अर्थात तू पुत्र चाहती है अतः हम दोनों मिलकर उत्तम संतान उत्पन्न करें। पुत्र अर्थात संतान उत्पन्न करने की कामना युवा पुरुष और युवती नारी में ही उत्पन्न हो सकती हैं। छोटे-छोटे बालक और बालिकाओं में नहीं हो सकती हैं।

इसी प्रकार से अथर्ववेद 2/30/5 में भी परस्पर युवक और युवती एक दूसरे को प्राप्त करके कह रहे हैं कि मैं पतिकामा अर्थात् पति की कामना वाली और यह तू जनीकाम अर्थात पत्नी की कामना वाला दोनों मिल गए हैं। युवा अवस्था में ही पति-पत्नी की कामना की इच्छा हो सकती है छोटे छोटे बालक और बालिकाओं में यह इच्छा नहीं होती हैं। इन प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि वेद बालविवाह का समर्थन नहीं करते।

शंका 12 : वेदों में नारी की महिमा का संक्षेप में वर्णन बताएं?

समाधान : संसार की किसी भी धर्म पुस्तक में नारी जाति की महिमा का इतना सुंदर गुण गान नहीं मिलता जितना वेदों में मिलता है। कुछ उदाहरण देकर हम अपने कथन को सिद्ध करेंगे।

1. उषा के समान प्रकाशवती - हे राष्ट्र की पूजा योग्य नारी! तुम परिवार और राष्ट्र में सत्यम, शिवम्, सुंदरम की अरुण कान्तियों को छिटकती हुई आओ, अपने विस्मयकारी सद्‌गुणगणों के द्वारा अविद्या ग्रस्त जनों को प्रबोध प्रदान करो। जन-जन को सुख देने के लिए अपने जगमग करते हुए रथ पर बैठ कर आओ। -ऋग्वेद 4/14/3
2. वीरांगना- हे नारी! तू स्वयं को पहचान। तू शेरनी है, तू शत्रु रूप मृगों का मर्दन करनेवाली है, देवजनों के हितार्थ अपने अन्दर सामथर्य उत्पन्न कर। हे नारी ! तू अविद्या आदि दोषों पर शेरनी की तरह टूटने वाली है, तू दिव्य गुणों के प्रचारार्थ स्वयं को शुद्ध कर! हे नारी ! तू दुष्कर्म एवं दुर्व्यसनों को शेरनी के समान विनष्ट करने वाली है, धार्मिक जनों के हितार्थ स्वयं को दिव्य गुणों से अलकृंत कर। -यजुर्वेद 5/10
3. वीर प्रसवा- राष्ट्र को नारी कैसी संतान दे- हमारे राष्ट्र को ऐसी अद्‌भुत एवं वर्धक संतान प्राप्त हो, जो उत्कृष्ट कोटि के हथियारों को चलाने में कुशल हो, उत्तम प्रकार से अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में प्रवीण हो, सम्यक नेतृत्व करने वाली हो, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चार पुरुषार्थ- समुद्रों का अवगाहन करनेवाली हो, विविध संपदाओं की धारक हो, अतिशय क्रियाशील हो, प्रशंसनीय हो, बहुतों से वरणीय हो, आपदाओं की निवारक हो। -ऋग्वेद 10/47/3
4. विद्या अलकृंत-विदुषी नारी अपने विद्या-बलों से हमारे जीवनों को पवित्र करती रहे। वह कर्मनिष्ठ बनकर अपने कर्मों से हमारे व्यवहारों को पवित्र करती रहे। अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्मों के द्वारा संतानों एवं शिष्यों में सद्‌गुणों और सत्कर्मों को बसाने वाली वह देवी गृह आश्रम-यज्ञ एवं ज्ञान-यज्ञ को सुचारू रूप से संचालित करती रहे। -यजुर्वेद 20/84
5. स्नेहमयी माँ- हे प्रेमरसमयी माँ! तुम हमारे लिए मंगलकारिणी बनो, तुम हमारे लिए शांति बरसाने वाली बनो, तुम हमारे लिए उत्कृष्ट सुख देने वाली बनो। हम तुम्हारी कृपा-दृष्टि से कभी वंचित न हो।
-अथर्ववेद 7/68/2
6. अन्नपूर्णा- इस गृह आश्रम में पुष्टि प्राप्त हो, इस गृहस्थ आश्रम में रस प्राप्त हो इस गिरः आश्रम में हे देवी! तू दूध-घी आदि सहस्त्रों पोषक पदार्थों का दान कर। हे यम-नियमों का पालन करने वाली गृहिणी! जिन गाय आदि पशु से पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं, उनका तू पोषण कर।
-अथर्ववेद 3/28/4

अंत में मनुस्मृति के प्रचलित श्लोक से इस विषय को विराम देना चाहेंगे। संसार में नारी जाति को सम्मान देने के लिए इससे सुन्दर शब्द शायद हो कहीं मिलेंगे।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। -मनुस्मृति 3/76

जिस कुल में नारियों की पूजा, अर्थात सत्कार होता है, उस कुल में दिव्यगुण, दिव्य भोग और उत्तम संतान होती हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहां जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं।

4 क्या वेदों में अश्लीलता हैं?

वेदों के विषय में कुछ लोगों को यह भ्रान्ति है कि वेदों में धार्मिक ग्रन्थ होते हुए भी अश्लीलता का वर्णन है। इस विषय को समझने की पर्याप्त आवश्यकता है, क्योंकि इस भ्रान्ति के कारण वेदों के प्रति साधारण जनमानस में आस्था एवं विश्वास प्रभावित होते हैं।

पश्चिमी विद्वान् ग्रिफ्फिथ महोदय ने इस विषय में ऋग्वेद 1/126 सूक्त के सात में पाँच मन्त्रों का भाष्य करने के पश्चात् अंतिम दो मन्त्रों का भाष्य नहीं किया है एवं परिशिष्ट में इनका लेटिन भाषा में अनुवाद देकर इस विषय में टिप्पणी लिखी है कि इन्हें पढ़कर ऐसा लगता है मानो ये मंत्र किसी असभ्य उच्छृंखल, बेलगाम मनमौजी गडरिये के प्रेमगीत के अंश हों।

ग्रिफ्फिथ महोदय अपने यजुर्वेद के भाष्य में भी 23 वें अध्याय के 19 वें मंत्र के पश्चात् सीधे 32 वें मंत्र के भाष्य पर आ जाते हैं। 20 वें मंत्र के विषय में उनकी टिप्पणी है कि यह और इसके अगले 9 मंत्र यूरोप की किसी भी सभ्य भाषा में वर्णन करने योग्य नहीं हैं। एवं 30 वें तथा 31 वें मंत्र का इन्हें पढ़े बिना कोई लाभ नहीं है।

विदेशी विद्वान् वेद के जिन मन्त्रों में अश्लीलता का वर्णन करते हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

ऋग्वेद 1/126/6-7
ऋग्वेद 1/164/33 और ऋग्वेद 3/31/1
यजुर्वेद 23-22,23
अथर्ववेद 1//11/ 3-6
अथर्ववेद 4//4/ 3-8
अथर्ववेद 6//72/ 1-3
अथर्ववेद 6/101/1-3
अथर्ववेद 6/138/4-5
अथर्ववेद 7/35/2-3
अथर्ववेद 7/90/3
अथर्ववेद 20/126/16-17
अथर्ववेद कांड 20 सूक्त 136 मंत्र 1-16

शंका 1 : वेदों में अश्लीलता का आक्षेप होने के कारण हैं?

समाधान : वेदों में किसी भी प्रकार की अश्लीलता नहीं है। संस्कृत भाषा में यौगिक, रुढ़ि एवं योगरुढि तीन प्रकार के शब्द होते हैं। किसी भी शब्द का रुढ़ अर्थ तभी लिया जा सकता है जब वह किसी विशेष अर्थ में बहुत समय तक प्रयोग में लाया जाता रहा हो। वैदिक भाषा आदि भाषा है। इसके शब्दों के रूढ़ अर्थ नहीं लिये जा सकते। ऐसे ही वेद में ये शब्द अवश्य हैं– लिंग, शिश्न, योनि, गर्भ, रेत, मिथुन आदि, पर इनसे आजकल प्रचलित अर्थों को ग्रहण नहीं किया जा सकता। आजकल भी इन शब्दों को हम सामान्य भाव से ग्रहण करते हैं जैसे लिंग का प्रयोग पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग में किया जाता है। योनि का प्रयोग मनुष्य योनि एवं पशु योनि में भेद करने के लिए प्रयुक्त होता है, गर्भ शब्द का प्रयोग पृथ्वी के गर्भ एवं हिरण्यगर्भ के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार से अनेक शब्दों के उदाहरण लौकिक और वैदिक साहित्य से दिए जा सकते हैं जिनमें सभ्य व्यक्ति अश्लीलता नहीं देखते। श्लीलता एवं अश्लीलता में केवल मनोवृत्ति का अंतर है। वेद के शब्दों के यौगिक अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। लौकिक व्यवहार में भी कई स्थानों पर शब्दों के यौगिक अर्थों का ग्रहण होता है। जैसे 'माता की रज को सिर में धारण करो' का तात्पर्य पग धूलि है न कि माता का 'रजस्वला' भाव। इस प्रकार शब्दों के अर्थों के अनुकूल एवं उचित प्रयोग करने से ही तथ्य का सही भाव ज्ञात होता है। इस भ्रान्ति का एक कारण कुछ मन्त्रों में अर्थों का अस्वाभाविक एवं पक्षपातपूर्ण प्रयोग करके उनमें व्यभिचार अथवा अश्लीलता को दर्शाना है। एक कारण तथ्य को गलत परिप्रेक्ष्य में समझना है। एक उदाहरण लीजिये– चिकित्सा विज्ञान की पुस्तकों में मानव गुप्तेन्द्रियों के चित्र को देखकर कोई यह नहीं कहता कि यह अश्लीलता है; क्योंकि उनका प्रयोजन शिक्षा है। इसी प्रकार से वेद ईश्वर प्रदत ज्ञान है। उसमें जो जो बातें हैं वे शिक्षा देने के लिए लिखी गई हैं। इसलिए उनमें अश्लीलता को मानना भ्रान्ति है।

शंका 2 : अगर वेदों में अश्लीलता नहीं है, तो फिर अनेक मन्त्रों में क्यों प्रतीत होता हैं?

समाधान : वेदों में अश्लीलता प्रतीत होने का प्रमुख कारण कुछ विनियोगकार, अनुक्रमणीकार, सायण, महीधर जैसे भाष्यकार और उनका अनुसरण करने वाले पश्चिमी और कुछ भारतीय लेखक हैं। यदि स्वामी दयानंद और यास्काचार्य की पद्धति से शब्दों के सत्य अर्थ पर विचार कर मन्त्रों के तात्पर्य को समझा जाता तो वेद मन्त्रों में ज्ञान–विज्ञान के विरुद्ध कुछ भी न

मिलता। कुछ उदाहरणों से हम इस शंका का निवारण करेंगे। ऋग्वेद 1/126 के छठे और सातवें मंत्र का सायणाचार्य, स्कंदस्वामी आदि ने राजा भावयव्य और उनकी पत्नी रोमशा के मध्य संभोग की इच्छा को लेकर अत्यंत अश्लील संवाद का वर्णन किया है। पाठक सम्बंधित भाष्यकारों के भाष्य में देख सकते हैं। वहीं स्वामी दयानंद इस मंत्र का सुन्दर एवं शिक्षाप्रद वास्तविक अर्थ करते हैं। इस मंत्र में राजा (जो उत्तम गुण सिखा सके और सब लोग जिसे ग्रहण करके उस पर सुगमता से चल सकें) के प्रजा के प्रति कर्तव्य का वर्णन करते हुए व्यवहारशील एवं प्रयत्नशील प्रजा को सैकड़ों प्रकार के भोज्य पदार्थ दे सकने वाली राजनीति करने का सुझाव दिया गया है। इससे अगले मंत्र में राजा की भाँति उसकी पत्नी के विदुषी और राजनीति में निपुण होने तथा प्रजा, विशेष रूप से स्त्रियों का न्याय करने में राजा की सहयोगिनी बनने का सन्देश है। ऋग्वेद 1/164/33 और ऋग्वेद 3/3/11 में पक्षपाती भाष्यकारों द्वारा प्रजापति का अपनी दुहिता (पुत्री) उषा और प्रकाश से सम्भोग की इच्छा करना बताया गया है, जिसे रुद्र ने विफल कर दिया; जिससे कि प्रजापति का वीर्य धरती पर गिर कर नष्ट हो गया। ऐसे अश्लील अर्थों को दिखाकर विधर्मी लोग वेदों में पिता-पुत्री के अनैतिक संबंधों का आक्षेप करते हैं। स्वामी दयानंद इन मंत्रों का निरुक्त एवं शतपथ का प्रमाण देते हुए अर्थ करते हैं कि प्रजापति कहते हैं सूर्य को; और उसकी दो पुत्री उषा (प्रातः काल में दिखने वाली लालिमा) और प्रकाश हैं। सभी लोकों को सुख देने के कारण सूर्य पिता के समान है और मान्य का हेतु होने से पृथ्वी माता के समान है। जिस प्रकार दो सेना आमने सामने होती हैं, उसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी आमने सामने हैं और प्रजापति पिता सूर्य मेघ रूपी वीर्य से पृथ्वी माता पर गर्भ स्थापना करता है जिससे अनेक औषिधियाँ आदि उत्पन्न होते हैं और जगत् का पालन होता है। यहाँ रूपक अलंकार है, जिसके वास्तविक अर्थ को न समझ कर प्रजापति की अपनी पुत्रियों से अनैतिक सम्बन्ध की कहानी बना दी गई। इन्द्र अहिल्या की कथा का उल्लेख ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों में मिलता है जिसमें कहा गया है कि स्वर्ग का राजा इन्द्र गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या पर आसक्त होकर उससे सम्भोग कर बैठता है। उन दोनों को एकांत में गौतम ऋषि देख लेते हैं और शाप देकर अहिल्या को पत्थर में बदल देते हैं। अपनी गलती मानकर अहिल्या गौतम ऋषि से शाप की निवृत्ति के लिये प्रार्थना करती है तो वे कहते हैं कि जब श्रीराम अपने पैर तुमसे लगायेंगे तब तुम शाप से मुक्त हो जाओगी। इस कथा का आलंकारिक अर्थ इस प्रकार है- यहाँ इन्द्र सूर्य है, अहिल्या रात्रि है और गौतम चंद्रमा है। चंद्रमा रूपी

गौतम रात्रि अहिल्या के साथ मिलकर प्राणियों को सुख पहुचाता है। इन्द्र यानि सूर्य के प्रकाश से रात्रि निवृत्त हो जाती है अर्थात् गौतम और अहिल्या का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। यजुर्वेद के 23/19-31 मन्त्रों में अश्वमेध यज्ञ परक अर्थों में महीधर के अश्लील अर्थ को देखकर किसी को भी ग्लानि हो सकती है। इन मन्त्रों में उसने यजमान राजा की पत्नी द्वारा अश्व का लिंग पकड़ कर उसे योनि में डालने, पुरोहित द्वारा राजा की पत्नियों के संग अश्लील उपहास करने का अश्लील अर्थ किया है। पाठक सम्बंधित भाष्यकार के भाष्य में देख सकते है। स्वामी दयानंद ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इन मन्त्रों का वास्तविक अर्थ इस प्रकार किया है- राजा प्रजा हम दोनों मिल के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के प्रचार करने में सदा प्रवृत्त रहें। किस प्रयोजन के लिए? कि दोनों की अत्यंत सुखस्वरूप स्वर्गलोक में प्रिय आनंद की स्थिति के लिए, जिससे हम दोनों परस्पर तथा सब प्राणियों को सुख से परिपूर्ण कर देवें। जिस राज्य में मनुष्य लोग अच्छी प्रकार ईश्वर को जानते हैं, वही देश सुखयुक्त होता है। इससे राजा और प्रजा परस्पर सुख के लिए सद्गुणों के उपदेशक पुरुष की सदा सेवा करें और विद्या तथा बल को सदा बढ़ावें।

ऋग्वेद 7/33/11 के आधार पर एक कथा प्रचलित कर दी गयी कि मित्र-वरुण का उर्वशी अप्सरा को देख कर वीर्य स्खलित हो गया। वह घड़े में जा गिरा जिससे वसिष्ठ ऋषि पैदा हुए। ऐसी अश्लील कथा से पढ़ने वाले की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

इस मंत्र का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है- अथर्ववेद 5/19/15 के आधार पर मित्र और वरुण वर्षा के अधिपति यानि वायु माने गए हैं, ऋग्वेद 5/41/18 के अनुसार उर्वशी बिजली है और वसिष्ठ वर्षा का जल है। यानि जब आकाश में ठंडी-गर्म हवाओं (मित्र-वरुण) का मेल होता है तो बिजली (उर्वशी) चमकती है और वर्षा (वसिष्ठ) की उत्पत्ति होती है। इस मंत्र का सत्य अर्थ पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है।

इस प्रकार वेदों में जिन जिन मन्त्रों में अश्लीलता का आक्षेप लगता है उसका कारण मन्त्रों के गलत अर्थ करना है। अधिक जानकारी के लिए स्वामी दयानंद, विश्वनाथ वेदालंकार, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, स्वामी सत्यप्रकाश, डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री आदि की रचनाएँ द्रष्टव्य हैं, जिनकी पर्याप्त सहायता इस लेख में ली गई है।

शंका 3 : वेदों में यम यमी जो कि भाई बहन हैं, उनके मध्य अश्लील संवाद होने से आप क्या समझते हैं?

समाधान : वेदों के विषय में अपने विचार प्रकट करते समय पाश्चात्य एवं अनेक भारतीय विद्वानों ने पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के कारण वेदों के सत्य ज्ञान को प्रचारित करने के स्थान पर अनेक भ्रामक तथ्यों को प्रचारित करने में अपना सारा श्रम व्यर्थ कर दिया। यम यमी सूक्त के विषय में इन्हीं तथाकथित विद्वानों की मान्यतायें इसी का उदाहरण हैं। दरअसल विकासवाद की विचारधारा को सिद्ध करने के प्रयासों ने इन लेखकों को यह कहने पर मजबूर किया कि आदि काल में मानव अत्यन्त अशिक्षित एवं जंगली था। विवाह सम्बन्ध, परिवार, रिश्ते नाते आदि का प्रचलन बाद के काल में हुआ। श्रीपाद अमृत डांगे लिखते हैं- 'इस प्रकार के गुणों में परस्पर भिन्न नातों तथा स्त्री पुरुष संबंधों की जानकारी न होना स्वाभाविक ही था। परन्तु इस प्रकार का अनियंत्रित सम्बन्ध संतति विकसन के लिए हानिकारक होने के कारण सर्वप्रथम माता-पिता एवं उनके बाल बच्चों के बीच सम्भोग पर नियंत्रण उपस्थित किया गया और इस प्रकार कुटुंब व्यवस्था की नींव रखी गई। यहाँ विवाह की व्यवस्था कुटुम्ब के अनुसार होनी थी, अर्थात् समस्त दादा दादी परस्पर एक दूसरे के पति पत्नी हो सकते थे। उसी प्रकार उनके लड़के लड़कियां अर्थात समस्त माता पिता एक दूसरे के पति पत्नी हो सकते थे। सगे व चचेरे भाई-बहिन सब सुविधानुसार एक दूसरे के पति पत्नी हो सकते थे। आगे चलकर भाई और बहिन के बीच निषेध उत्पन्न किया गया। परन्तु उस नवीन सम्बन्ध का विकास बहुत ही मंदगति से हुआ और उसमें अड़चन भी बहुत हुई, क्योंकि समान वय के स्त्री पुरुषों के बीच यह एक अपरिचित सम्बन्ध था। एक ही माँ के पेट से उत्पन्न हुई सगी बहिन से प्रारंभ कर इस सम्बन्ध का धीरे-धीरे विकास किया गया। परन्तु इसमें कितनी कठिनाई हुई होगी, इसकी कल्पना ऋग्वेद के यम-यमी सूक्त से स्पष्ट हो जाती है। यम की बहिन यमी अपने भाई से प्रेम एवं संतति की याचना करती है। परन्तु यम यह कहते हुए उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता है कि देवताओं के श्रेष्ठ पहरेदार वरुण देख लेंगे एवं क्रुद्ध हो जायेंगे। इसके विपरीत यमी कहती है कि वे इसके लिए अपना आशीर्वाद देंगे। इस संवाद का अंत कैसे हुआ, यह प्रसंग तो ऋग्वेद में नहीं है, परन्तु यदि यह मान लिया जाये कि अंत में यम ने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया तो भी यह स्पष्ट है कि प्राचीन परिपाटी को तोड़ने में कितनी कठिनाई का अनुभव हुआ होगा।' (Origin of Marriage by Dange)

यम यमी सूक्त ऋग्वेद 10/10 और अथर्ववेद 18/1 में आता है। डांगे विदेशी विद्वानों की सोच का ही अनुसरण करते दिख रहे हैं। यम यमी सूक्त का मूल भाव भाई-बहन के संवाद के माध्यम से शिक्षा देना है। यम और यमी दिन और रात हैं, दोनों जड़ हैं। इन्ही दोनों जड़ों को भाई बहन मानकर वेद

ने एक धर्म विशेष का उपदेश किया है। अलंकार के रूपक से दोनों में बातचीत है। यमी यम से कहती है कि आप मेरे साथ विवाह कीजिये, पर यम कहता है कि-

बहिन के साथ कुत्सित व्यवहार करने से पाप होता है। पुराकाल में कभी भाई बहिन का विवाह नहीं हुआ, इसलिए तू दूसरे पुरुष को पति बना। परमात्मा ने जड़ प्रकृति का उदाहरण देकर यह सूचित करा दिया है कि एक जड़ स्त्री के कहने पर भी पाप के डर से परम्परा की शिक्षा से प्रेरित होकर एक जड़ पुरुष जब इस प्रकार के पाप कर्म को करने से इंकार करता है, तब चेतन ज्ञानवान मनुष्य को भी चाहिए कि वह भी इस प्रकार का कर्म कभी न करे।

वेदों में बहिन भाई के व्यभिचार का कितना कठोर दंड है, तो श्रीपाद डांगे का यह कथन अज्ञानता मात्र हैं। देखें-

ऋग्वेद 10/162/5 और अथर्ववेद 20/16/15 में आता है- जो तेरा भाई तेरा पति होकर जार कर्म करता है और तेरी संतान को मारता है, उसका हम नाश करते हैं।

अथर्ववेद 20/16/5 में आता है- यदि तुझे सोते समय (स्वप्न में) तेरा भाई अथवा तेरा पिता भूलकर भी प्राप्त हो तो वे दोनों गुप्त पापी औषधि प्रयोग से नपुंसक करके मार डाले जाएँ।

आगे श्रीपाद डांगे का यह कथन भी, कि विवाह, रिश्ते आदि से मनुष्य जाति वैदिक काल में अनभिज्ञ थी, अज्ञानता मात्र है। ऋग्वेद 10/85 के विवाह सूक्त, अथर्ववेद 4/1, 7/37, 7/38 में पाणिग्रहण अर्थात् विवाह विधि, वैवाहिक प्रतिज्ञाएँ, पति पत्नी सम्बन्ध, योग्य संतान का निर्माण, दाम्पत्य जीवन, गृह प्रबंध एवं गृहस्थ धर्म का स्वरुप देखने को मिलता है, जो विश्व की किसी अन्य सभ्यता में शायद ही मिले।

वैदिक काल के आर्यों के गृहस्थ विज्ञान की विशेषता को जानकर श्रीमती एनी बेसेंट ने लिखा है- भूमंडल के किसी भी देश में, संसार की किसी भी जाति में, किसी भी धर्म में विवाह का महत्व ऐसा गंभीर एवं ऐसा पवित्र नहीं है, जैसा प्राचीन आर्ष ग्रंथों में पाया जाता है। यम यमी सूक्त एक आदर्श को स्थापित करने का सन्देश है, न कि भाई-बहन के मध्य अनैतिक सम्बन्ध का विवरण है।

शंका 4 : क्या अथर्ववेद में वर्णित गर्भाधान, प्रसव विद्या आदि की प्रक्रिया का वर्णन अश्लील नहीं है?

समाधान : सभी मनुष्यों के कल्याणार्थ ईश्वर द्वारा वेदों में गृहस्थाश्रम के पालन

हेतु व संतान उत्पत्ति हेतु अथर्ववेद के 14 वें कांड के 2 सूक्त के 31, 32, 38 और 39 मन्त्रों में गर्भाधान की प्रक्रिया का वर्णन है। यह वर्णन ठीक इस प्रकार है जैसा चिकित्सा विज्ञान के पुस्तकों में वर्णित होता है एवं उसे कोई भी अश्लील नहीं मानता। इसी प्रकार अथर्ववेद के पहले कांड 11 वें सूक्त में प्रसव विद्या का वर्णन है। ग्रिफ्फिथ इन मन्त्रों को अश्लील मानते हुए अवांछनीय टिप्पणी लिख देते हैं। अब कोई ग्रिफ्फिथ साहिब से पूछे कि चिकित्सा विज्ञान में जब अध्यापक छात्रों को प्रसव प्रक्रिया पढ़ाते हैं, तो क्या योनि, गर्भ, लिंग आदि शब्द अश्लील प्रतीत होते हैं। उत्तर स्पष्ट है- कदापि नहीं। अंतर केवल मनोवृत्ति का है। इन मन्त्रों में कहीं भी अनाचार, व्यभिचार आदि का वर्णन नहीं है, यही अंतर इन्हें अश्लील से श्लील बनाता है।

5 क्या वेद आर्य-द्रविड़ युद्ध का वर्णन करते हैं?

वेदों के विषय में एक अन्य भ्रान्ति फैलाई जा रही रही है कि वेदों में ऐसा वर्णन है कि आर्य लोग विदेशी (संभवतः मध्य एशिया मूल के) थे और वे भारत भूमि पर आक्रमणकारी के रूप में आये। यहाँ के मूल निवासी काले रंग के लोगों पर जो द्रविड़ (दास) थे और जिन्हें आर्यों ने दास और दस्युओं का नाम दिया था। उन पर आर्यों ने अनेक अत्याचार किये। The Aryan invaders or immigrants found in India to groups of people, one of which they named the Dasas and Dasyu, and the other Nishadas- Vedic Age p-156 अर्थात् आर्य आक्रान्ताओं ने भारत में दो प्रकार के वर्गों को पाया। एक वर्ग को उन्होंने दास और दस्यु का नाम दिया और दूसरे को निषादों का। आर्य-द्रविड़ युद्ध की मान्यता के चलते यह भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि दक्षिण भारत में रहने वाले एवं श्याम वर्ण वाले लोगों को उत्तर भारत में रहने वाले श्वेत वर्ण वाले लोगों ने प्रताड़ित एवं पीड़ित किया है। इस भ्रान्ति के निवारण के लिए कुछ प्रश्नों पर विचार अपेक्षित है।

शंका 1 : आर्य और द्रविड़ शब्द का क्या अर्थ है? आर्य कौन कहलाते हैं? क्या आर्य और द्रविड़ या दास अलग-अलग जातियाँ हैं?

समाधान : आर्य शब्द कोई जातिवाचक शब्द नहीं है, अपितु गुणवाचक शब्द है। ऋग्वेद 10/64/1 के अनुसार आर्य वे कहलाते हैं, जो भूमि पर सत्य, अहिंसा, पवित्रता, परोपकार आदि व्रतों को विशेष रूप से धारण करते हैं। आर्य शब्द 'ऋ' धातु से बनता है जिसका अर्थ 'गति-प्रापणयोः' है, अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति करने और प्राप्त कराने वाले को आर्य कहते हैं। अर्थात् आर्य वे हैं जो ज्ञान-संपन्न हैं, जो सन्मार्ग की ओर सदा गति करने वाले पुरुषार्थी हैं और जो ईश्वर तथा परमानन्द को प्राप्त करने तथा तदर्थ-प्रयत्नशील होते हैं। संस्कृत कोष शब्दकल्पद्रुम में आर्य का अर्थ पूज्य, श्रेष्ठ, धार्मिक, धर्मशील, मान्य, उदारचरित, शांतचित, न्याय-पथावलम्बी, सतत कर्त्तव्य कर्म अनुष्ठाता आदि मिलता है। आर्य शब्द का अर्थ होता हैं- 'श्रेष्ठ'। अथवा बलवान, ईश्वर का पुत्र, ईश्वर के ऐश्वर्य का स्वामी, उत्तम गुणयुक्त, सद्गुण परिपूर्ण आदि।

वेद, रामायण, महाभारत, गीता आदि में 'आर्य' शब्द का प्रयोग गुणवाची के रूप में ही हुआ है। आर्य शब्द का प्रयोग वेदों में निम्नलिखित विशेषणों

के लिए हुआ है-
श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए ऋग्वेद 1/103/3, ऋग्वेद 1/130/8, ऋग्वेद 10/49/3, इन्द्र का विशेषण ऋग्वेद 5/34/6, ऋग्वेद 10/138/3, सोम का विशेषण ऋग्वेद 9/63/5,ज्योति का विशेषण ऋग्वेद 10/43/4, व्रत का विशेषण ऋग्वेद 10/65/11, प्रजा का विशेषण ऋग्वेद 7/33/7, वर्ण के विशेषण ऋग्वेद 3/34/9 के रूप में हुआ है।
निरुक्त में आर्य शब्द का प्रयोग 'ईश्वर पुत्र' के रूप में हुआ है।
रामायण बालकाण्ड में आर्य शब्द आया है। श्रीराम के उत्तम गुणों का वर्णन करते हुए वाल्मीकि रामायण में नारद मुनि ने कहा है- आर्यः सर्वसमश्चायम्, सोमवत् प्रियदर्शनः रामायण बालकाण्ड 1/16 अर्थात् श्री राम आर्य, धर्मात्मा, सदाचारी, सबको समान दृष्टि से देखने वाले और चंद्र की तरह प्रिय दर्शन वाले थे।
किष्किन्धा काण्ड 19/27में बाली की स्त्री पति के वध हो जाने पर उसे आर्य पुत्र कह कर रुदन करती है।
महाभारत में 'आर्य' शब्द 8 गुणों से युक्त व्यक्ति के लिए आया है। जो ज्ञानी हो, सदा संतुष्ट रहनेवाला हो, मन को वश में रखनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र गुणवाला आर्य कहलाता है।
भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने जब देखा कि वीर अर्जुन अपने क्षात्र धर्म के आदर्श से च्युत होकर मोह में फँस रहा है तो उसे सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा है कि 'कुतस्त्वा कश्मलमिदं, विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन गीता 2/3 अर्थात् हे अर्जुन, यह अनार्यों व दुर्जनों द्वारा सेवित, नरक में ले-जानेवाला, अपयश करने वाला पाप इस कठिन समय में तुझे कैसे प्राप्त हो गया? यहाँ श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आर्य बनाने के लिए अनार्यत्व के त्याग को कहा है।
इस प्रकार से वैदिक वाङ्मय में आर्य शब्द का प्रयोग गुणों से श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए हुआ है।

दास शब्द का अर्थ

दास शब्द का प्रयोग अनार्य, अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय व्यवहार शून्य, भृत्य, बल रहित शत्रु के लिए हुआ है न कि किसी विशेष जाति के लोगों के लिए हुआ है।
दास शब्द का वेदों में विविध रूपों में प्रयोग-
मेघ के विशेषण के रूप में ऋग्वेद 5/30/7 में हुआ है। शीघ्र बनने वाले मेघ के रूप में ऋग्वेद 6/26/5 में हुआ है। बिना बरसने वाले मेघ के लिए ऋग्वेद 7/19/2 में हुआ है। बलरहित शत्रु के लिए ऋग्वेद 10/83/1 में हुआ

है। अनार्य के लिए ऋग्वेद 10/83/19 में हुआ है। अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय व्यवहार से शून्य व्यक्ति के लिए ऋग्वेद 10/22/8 में प्रयोग हुआ है। प्रजा के विशेषण में ऋग्वेद 6/25/2, 10/148/2 और 2/11/4 में प्रयोग हुआ है। वर्ण के विशेषण रूप में ऋग्वेद 3/34/9, 2/12/4 में हुआ है। उत्तम कर्महीन व्यक्ति के लिए ऋग्वेद 10/22/8 में दास शब्द का प्रयोग हुआ है, अर्थात् यदि ब्राह्मण भी कर्महीन हो जाय तो वो भी दास कहलायेगा। गूंगे या शब्दहीन के विशेषण में ऋग्वेद 5/29/10 में दास शब्द का प्रयोग हुआ है। अष्टाध्यायी 3/3/19 में दास का अर्थ लिखा है -दस्यते उपक्षीयते इति दासः जो साधारण प्रयत्न से क्षीण किया जा सके ऐसा साधारण व्यक्ति व 3/1/134 में आया है- 'दासति दासते वा यः सः' अर्थात् दान करने वाला। यहाँ दास का प्रयोग दान करने वाले के लिए हुआ है। अष्टाध्यायी 3/1/134 में दास्यति यः सः दासः अर्थात् जो प्रजा को मारे, वह दास। यहाँ दास प्रजा को और उसके शत्रु दोनों को कहा है। अष्टाध्यायी 5/10 में हिंसा करने वाले, गलत भाषण करने वाले को दास दस्यु (डाकू) कहा है।
निरुक्त 7/23 में कर्मों के नाश करने वाले को दास कहा है।
दस्यु शब्द का प्रयोग उत्तम कर्म हीन व्यक्ति ऋग्वेद 7/5/6, अज्ञानी, अव्रती ऋग्वेद 10/22/8, मेघ ऋग्वेद 1/59/6 आदि के लिए हुआ है न कि किसी विशेष जाति अथवा स्थान के लोगों के लिए।
वैदिक वाङ्मय में और राष्ट्र के लिए सहायक व्यक्तियों को आर्य एवं घातक व्यक्तियों को दास या दस्युओं माना गया है। आर्य और द्रविड़ में भेद व्यक्ति के गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर बताये गए है न कि उत्तर दक्षिण भारतीय, श्याम-श्वेत वर्ण, बाहर से आये हुए एवं स्थानीय मूलनिवासी के आधार पर माना गया है। इस विषय को ठीक प्रकार से न समझ पाने के कारण पश्चिमी लेखकों ने आर्यों द्वारा भारत पर बाहर से आकर आक्रमण करने की निराधार कल्पना को जन्म दिया। इसी अधकचरे ज्ञान के आधार पर कुछ लोग अपनी छोटी राजनीति करते दीखते हैं। यह समाधान पढ़ लेने के पश्चात् आर्य-द्रविड़ युद्ध की कल्पना त्यागने योग्य है।

शंका 2 : वेदों के मन्त्रों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य और भारत के आदिवासी दो अलग अलग जातियां थीं। आर्य और आदिवासियों का स्वरूप और धार्मिक विश्वास भिन्न-भिन्न था।

समाधान : पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के अनुसार आदिवासियों को काले वर्ण वाला, अनास यानि चपटी नाक वाला और लिंग देव अर्थात् शिश्नदेव की पूजा करने वाला लिखा है, जबकि आर्यों को श्वेत वर्ण वाला सीधी नाक

वाला और देवताओं की पूजा करने वाला लिखा है।
MacDonnell लिखते हैं the term Das/ Dasyu properly the name of the dark aborigine. अर्थात् दास, दस्यु काले रंग के आदिवासी ही हैं।
Griffith Rigveda 1/10/1 – The dark aborigines who opposed the Aryans अर्थात् काले वर्ण के आदिवासी जो आर्यों का विरोध करते थे।
Vedic mythology 151,152 में भी आर्यों द्वारा कृष्ण वर्ण वाले दस्युओं को हरा कर उनकी भूमि पर अधिकार करने की बात कही गयी है। ऋग्वेद के 1/101/1, 1/130/8, 2/20/7 और 4/16/13 मंत्रों का हवाला देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भारत के मूल निवासी कृष्ण वर्ण के थे। ऋग्वेद 7/17/14 में सायण ने कृष्ण का अर्थ मेघ की काली घटा किया है। अन्य सभी मंत्रों में इसी प्रकार इन्द्र के वज्र का मेघ रूपी बादलों से संघर्ष का वर्णन है। बादलों के कृष्ण वर्ण की आदिवासियो के कृष्ण वर्ण से तुलना कर बिजली (इन्द्र के वज्र) और बादल (मेघ) के संघर्ष के मूल अर्थ को छुपाकर उसे आर्य-दस्यु युद्ध की कल्पना करना कुटिलता नहीं तो और क्या है? वैदिक इंडेक्स के लेखक ने ऋग्वेद 5/29/10 में अनास शब्द की चपटी नाक वाले द्रविड़ आदिवासी की व्याख्या की है। ऋग्वेद 5/29/10 में दासों को द्वेषपूर्ण वाणी वाले या लड़ाई के बोल बोलने वाले कहाँ गया है। ऋग्वेद 5/129/10 में अनास शब्द का अर्थ चपटी नाक वाला नहीं अपितु शब्द न करने वाला अर्थात मूक मेघ है, जिसे इन्द्र अपने वज्र (बिजली) से छिन्न-भिन्न कर देता है। यहाँ भी अपनी कुटिलता से द्रविड़ या आदिवासियों को आर्यों से अलग दिखने का कुटिल प्रयास किया गया है।
वैदिक इंडेक्स के लेखक ने ऋग्वेद 7/21/5 और 10/99/3 के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दस्यु लोगों की पूजा पद्धति भिन्न थी और वे शिश्नपूजा अर्थात् लिंग पूजा करते थे।
यास्काचार्य ने निरुक्त 4/19 में शिश्न पूजा का अर्थ किया है, अब्रह्मचर्य अर्थात् जो 'कामी व्यभिचारी व्यक्ति' हो किया है। ऋग्वेद के 7/21/5 और 10/99/3 में भी कहा गया है कि लोगों को पीड़ा पहुंचाने वाले, कुटिल, तथा शिश्नदेव (व्यभिचारी) व्यक्ति हमारे यज्ञों को प्राप्त न हो, अर्थात् दुष्ट व्यक्तियों का हमारे धार्मिक कार्यों में प्रवेश न हो।
वैदिक इंडेक्स के लेखक इन मंत्रों के गलत अर्थ को करके भ्रान्ति उत्पन्न कर रहे हैं कि दस्यु लोग लिंग पूजा करते हैं, एवं आर्य लोग उनसे विभिन्न पूजा पद्धति को मानने वाले हैं। सत्य अर्थ यह है कि दस्यु शब्द किसी वर्ग या जाति विशेष का नाम नहीं है बल्कि जो भी व्यक्ति दुर्गुण युक्त है, वह दस्यु है और दुर्गुणी व्यक्ति किसी भी समुदाय में हो, उसका दुर्गुण दूर करने

योग्य है। वेद मन्त्रों के गलत अर्थ दिखाकर इनको भिन्न-भिन्न जातियों के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया गया है, जिससे परस्पर अंतर्विरोध एवं द्वेष भावना को बल मिले।

शंका 3 : आर्य-दस्यु युद्ध पर स्वामी दयानंद का क्या दृष्टिकोण है?

समाधान : स्वामी दयानंद आर्यों के बाहर से आने एवं स्थानियों को युद्ध में परास्त करने का स्पष्ट खंडन करते हैं। स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं-
'किसी सस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों को लड़कर जय पा के निकाल के इस देश के राजा हुए- सत्यार्थ प्रकाश, 8 सम्मुलास, स्वामी दयानंद
स्वामी जी आर्यों और दस्युओं का गुणों के आधार पर विभाजन मानते हैं।
'जो आर्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं, वैसे ही मैं भी मानता हूँ।'
स्वामी जी आर्यों के निवास स्थान को आर्यावर्त के रूप में सम्बोधित करते हुए उसे भारतवर्ष ही मानते हैं। स्वामी जी लिखते हैं-
'आर्यावर्त देश इस भूमि का नाम इसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्याचल पश्चिम में अटक और पूर्व में ह्मपुत्र नदी है, इन चारों के बीच में जितना प्रदेश हैं उसको आर्याव्रत कहते और जो इसमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं, स्वमंतव्यामंतव्य-प्रकाश, स्वामी दयानंद
आर्य और दस्यु के मध्य संबंधों पर स्वामी दयानंद द्वारा विशेष व्याख्या की गई है। स्वामी जी ऋग्वेद 10/64/11 मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- हे यथायोग्य सबको जाननेवाले ईश्वर! आप (आर्यान्) विद्या-धर्म आदि उत्कृष्ट स्वभाव आचरण युक्त आर्यों को जानो (ये च दस्यवः) और जो नास्तिक, डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषय-लम्पट, हिंसा आदि दोषयुक्त, उत्तम कर्मों में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थ-साधन में तत्पर, वेद-विद्या-विरोधी अनार्य मनुष्य सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंशक हैं। इन सब दुष्टों को आप (रन्धय) समूलान् विनाशय- मूलसहित नष्ट कर दीजिये। और (शासदव्रतान्) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि धर्मानुष्ठान व्रतरहित, वेदमार्ग उच्छेदक अनाचारियों को यथायोग्य शासन कीजिये (शीघ्र उन पर दंड- निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षायुक्त हो के शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त हो जाय, किंवा हमारे वश में ही रहें तथा जीव को परम शक्तियुक्त, शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करनेवाले हों। आप हमारे

दुष्ट कामों के विरोधक हों। मैं उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की कामना करता हूं, सो आप पूरी करें- आर्याभिविनय 1/14 ।

स्वामी दयानंद भी आर्य-दस्यु शब्दों को गुणात्मक मानते हैं न कि किसी विशेष समूह अथवा जाति का वाचक।

योगी अरविन्द भी स्वामी दयानंद के समान आर्य शब्द को गुणवाचक मानते हैं। अरविन्द जी के अनुसार आर्य शब्द में उदारता, नम्रता, श्रेष्ठता, सरलता, साहस, पवित्रता, दया, निर्बल संरक्षण, ज्ञान के लिए उत्सुकता, सामाजिक कर्तव्य पालनादि सब उत्तम गुणों का समावेश हो जाता है। मानवीय भाषा में इससे अधिक उत्तम और कोई शब्द नहीं। आर्य आत्मसंयमी और आंतरिक तथा बाह्य स्वराज्य-प्रेमी होता है। वह अज्ञान, बंधन तथा किसी प्रकार की दासता में रहना पसंद नहीं करता। उसकी इच्छा शक्ति दृढ़ होती है। प्रत्येक वस्तु में वह सत्य, उच्चता तथा स्वतंत्रता की खोज करता है। आर्य एक कार्यकर्ता और योद्धा होता है जो अपने अंदर और जगत् में ईश्वर के राज्य को लाने के लिए अज्ञान, अन्याय तथा अत्याचारादि के विरुद्ध युद्ध करता है। - आर्य पत्रिका प्रथम अंक 1914 ।

शंका 4 : क्या वेदों में आर्य-द्रविड़ युद्ध का वर्णन मिलता है?

समाधान : वैदिक इंडेक्स आदि के लेखकों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वेद में आर्य और दस्युओं के युद्ध का वर्णन है। वेद में दासों के साथ युद्ध करने का वर्णन तो मिलता है, पर यह मानवीय नहीं अपितु प्राकृतिक युद्ध है। जैसे इन्द्र और वृत्र का युद्ध। इन्द्र बिजली का नाम है जबकि वृत्र मेघ का नाम है। इन दोनों का परस्पर संघर्ष प्राकृतिक युद्ध जैसा है। यास्काचार्य ने भी निरुक्त में इन्द्र-वृत्र युद्ध को प्राकृतिक माना है। इसलिए वेद में जिन भी स्थलों पर आर्य-दस्यु युद्ध की बात की गई है उन स्थलों को प्रकृति में होने वाली क्रियाओं की उपमा से दर्शित किया गया है। उनके वास्तविक अर्थ को न समझ कर अज्ञानता से अथवा जान कर वेदों को बदनाम करने के लिए एवं आर्य द्रविड़ के विभाजन की नीति को पोषित करने के लिए युद्ध की परिकल्पना की गयी, जो कि गलत है।

शंका 5 : डॉ० अम्बेडकर के इस विषय पर क्या विचार हैं?

समाधान : डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक शूद्र कौन? Who were Shudras? में स्पष्ट रूप से विदेशी लेखकों की आर्यों के बाहर से आकर यहाँ पर बसने सम्बंधित मान्यता का खंडन किया है। डॉ. अम्बेडकर लिखते हैं-

1. वेदों में आर्य जाति के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है।

2. वेद में ऐसा कोई प्रसंग उल्लेख नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण कर यहाँ के मूलनिवासी दासों-दस्युओं को विजय किया।

3. आर्य, दास और दस्यु जातियों के अलगाव को सिद्ध करने के लिये कोई साक्ष्य वेदों में उपलब्ध नहीं है।

4. वेदों में इस मत की पुष्टि नहीं की गई कि आर्य, दासों और दस्युओं से भिन्न रंग के थे।

डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से स्वामी दयानंद की मान्यता का अनुमोदन किया है। वे आर्य शब्द को जातिसूचक नहीं, अपितु गुणवाचक ही मानते थे। इसी सन्दर्भ में उन्होंने शूद्र को इसी पुस्तक के पृष्ठ 80 पर 'आर्य' ही माना है। वे आर्यों के बाहरी आक्रमण सिद्धान्त का स्पष्ट खंडन करते हैं। न ही आर्य और दास को अलग मानते हैं। रंग, बनावट आदि के आधार पर आर्यों-दस्युओं में भेद को स्पष्ट खारिज करते हैं।

6

वेद और देव

वेदों में देव विषय को लेकर अनेक भ्रांतियां हैं।

शंका 1 : देव शब्द से क्या अभिप्राय समझते हैं?

समाधान : 7/15 निरुक्त में यास्काचार्य के अनुसार देव शब्द दा, द्युति और दिवु इस धातु से बनता है। इसके अनुसार ज्ञान, प्रकाश, शांति, आनंद तथा सुख देने वाली सब वस्तुओं को देव कहा जा सकता है। यजुर्वेद 14/20 में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, वसु, रुद्र, आदित्य, इंद्र इत्यादि को देव के नाम से पुकारा गया है। परन्तु पूजा के योग्य केवल एक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, भगवान ही है। देव शब्द का प्रयोग सत्यविद्या का प्रकाश करनेवाले सत्यनिष्ठ विद्वानों के लिए भी होता है क्योंकि वे ज्ञान का दान करते हैं और वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करते हैं। देव का प्रयोग जीतने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों विशेषतः वीर, क्षत्रियों, परमेश्वर की स्तुति करने वाले तथा पदार्थों का यथार्थ रूप से वर्णन करनेवाले विद्वानों, ज्ञान देकर मनुष्यों को आनंदित करनेवाले सच्चे ब्राह्मणों, प्रकाशक, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, सत्य व्यवहार करने वाले वैश्यों के लिए भी होता है।

शंका 2 : वेदों में 33 देवों होने से क्या अभिप्राय हैं?

समाधान : वेदों एवं ब्राह्मण आदि ग्रंथों में 33 देवों का वर्णन मिलता है। 33 देवों के आधार पर यह निष्कर्ष प्रायः निकाला जाता है कि वेद अनेकेश्वरवादी अर्थात् एक से अधिक ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं। वेदों में अनेक स्थानों पर 33 देवों का वर्णन मिलता है। ईश्वर और देव में अंतर स्पष्ट होने से एक ही उपासना करने योग्य ईश्वर एवं कल्याणकारी अनेक देवों में सम्बन्ध स्पष्ट होता है। 4/5/7/2 शतपथ के अनुसार 33 देवता हैं- 8 वसु, 11 रुद्र, 12 आदित्य, द्यावा और पृथ्वी और 34 वां प्रजापति परमेश्वर है। इसी बात को ताण्ड्य महाब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा गया है। शतपथ के अनुसार 8 वसु हैं- अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, अंतरिक्ष, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र। क्योंकि ये जगत् को बसाने वाले हैं। 11 रुद्रों से तात्पर्य 10 प्राण एवं 11 वें आत्मा से है, क्योंकि ये शरीर से निकलते हुए प्राणियों को रुलाते हैं। 12 आदित्य से तात्पर्य वर्ष के 12 मासों से है, क्योंकि ये हमारी आयु को मानो प्रतिदिन ले जा रहे हैं। 32 वां इंद्र अथवा बिजली है एवं 33 वां प्रजापति अथवा यज्ञ है।

शंका 3 : परमेश्वर और 33 देवों में क्या सम्बन्ध है?

परमेश्वर और 33 देवों के मध्य सम्बन्ध का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये 33 देव जिसके अंग में समाये हुए हैं उसे स्कम्भ (सर्वाधार परमेश्वर) कहो। वही सबसे अधिक सुखदाता है। ये 33 देव जिसकी निधि की रक्षा करते हैं उस निधि को कौन जानता है? ये देव जिस विराट शरीर में अंग के समान बने हैं उन 33 देवों को ब्रह्मज्ञानी ही ठीक ठीक जानते हैं, अन्य नहीं, इत्यादि। इन सभी में पूजनीय तो वह एकमात्र देवों का अधिदेव और प्राणस्वरूप परमेश्वर ही है।

वेद में अनेक मन्त्रों के माध्यम से ईश्वर को देवों का पिता, मित्र, आत्मा, जनिता अर्थात् उत्पादक, अंतर्यामी, अमरता को प्रदान करने वाला, कष्टों से बचानेवाला, जीवनाधार, देवों अर्थात सत्यनिष्ठ विद्वान का मित्र आदि के रूप में कहा गया है। जैसे-

1- जो श्रद्धा से देवों के पिता वा पालक उस ज्ञान के स्वामी परमेश्वर की उपासना करता है, उसका जन्म सफल हो जाता है। -ऋग्वेद 2/26/3

2- परमेश्वर सत्यनिष्ठ विद्वानों (देव) का कल्याणकारी मित्र है।
– ऋग्वेद 1/31/
1

3- परमेश्वर देवों का आत्मा है। – ऋग्वेद 4/3/7

4- परमेश्वर सब देवों का अंतर्यामी आत्मा है। – ऋग्वेद 10/168/4

5- परमेश्वर सब देवों का अधिष्ठाता देव है। – ऋग्वेद 10/121/8

6- परमेश्वर सब देवों में बड़ा देव है। – ऋग्वेद 1/50/9

7- वह परमेश्वर हमारा बंधु है। – यजुर्वेद 32/10

8- जैसे वृक्ष के तने के आश्रित सब शाखाएं होती हैं, वैसे ही उस परम देव के आश्रय में अन्य सब देव रहते हैं। – अथर्ववेद 10/7/38

शंका 4 : स्वामी दयानंद के अनुसार देवता शब्द का क्या अभिप्राय है?

स्वामी दयानंद देव शब्द पर विचार करते हुए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि दान देने से देव नाम पड़ता है और दान कहते हैं- अपनी चीज दूसरे के अर्थ दे देना। दीपन कहते हैं प्रकाश करने को, द्योतन कहते हैं सत्योपदेश को, इनमें से दान का दाता मुख्य एक ईश्वर ही है कि जिसने जगत् के सब पदार्थ दे रखे हैं तथा विद्वान् मनुष्य भी विद्यादि पदार्थों के देनेवाले होने से देव कहाते हैं। दीपन अर्थात् सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करने से सूर्यादि लोकों का नाम भी देव है। माता-पिता, आचार्य और अतिथि भी पालन, विद्या और सत्योपदेशादि के करने से देव कहाते हैं। वैसे ही सूर्यादि लोकों का भी जो प्रकाश करनेवाला है, सो ही ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने के योग्य इष्टदेव है, अन्य कोई नहीं।

कठोपनिषद 5/15 का भी प्रमाण है कि सूर्य, चन्द्रमा, तारे, बिजली और अग्नि ये सब परमेश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते, किन्तु इस सबका प्रकाश करनेवाला एक वही है, क्योंकि परमेश्वर के प्रकाश से ही सूर्य आदि सब जगत् प्रकाशित हो रहा है। इसमें यह जानना चाहिये कि ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ स्वतन्त्र प्रकाश करनेवाला नहीं है, इससे एक परमेश्वर ही मुख्य देव है।

शंका 5 : वेदों में एकेश्वरवाद अर्थात् ईश्वर के एक होने के क्या प्रमाण हैं?

समाधान : पश्चिमी विद्वान् वेदों में बहुदेवतावाद या अनेकेश्वरवाद मानते हैं। जब उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि वेदों ने प्रारम्भ से अनेकेश्वरवाद के क्रमबद्ध तत्वज्ञान का विकास प्राकृतिक, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद की मंजिलों से गुजरते हुए किया। यह एक कल्पना मात्र है, क्योंकि निष्पक्ष रूप से पढ़ने से ज्ञात होता है कि वेदों में अनेक देवताओं का वर्णन मिलता है मगर पूजा का विधान केवल देवाधिदेव सभी देवों के अधिष्ठाता एक ईश्वर का ही बताया गया है। इंद्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा, वायु, सूर्य, सविता आदि प्रधानतया उस एक परमेश्वर के ही भिन्न-भिन्न गुणों को सूचित करने वाले नाम हैं।

वेदमंत्रों में ईश्वर के एक होने के अनेक प्रमाण हैं। जैसे-

ऋग्वेद :

1. जो एक ही सब मनुष्यों का और वसुओं का ईश्वर है।-ऋग्वेद 1/7/9
2. जो एक ही है और दानी मनुष्य को धन प्रदान करता है।-ऋग्वेद 1/84/6
3. जो एक ही है और मनुष्यों से पुकारने योग्य है।-ऋग्वेद 6/22/1
4. हे परमेश्वर (इन्द्र), तू सब जनों का एक अद्वितीय स्वामी है, तू अकेला समस्त जगत का राजा है।-ऋग्वेद 6/36/4
5. हे मनुष्य, जो परमेश्वर एक ही है, उसी की तू स्तुति कर, वह सब मनुष्यों का द्रष्टा है।-ऋग्वेद 6/45/16
6. जो एक ही अपने पराक्रम से सबका ईश्वर बना हुआ है।-ऋग्वेद 8/6/41
7. विश्व को रचने वाला एक ही देव है, जिसने आकाश और भूमि को जन्म दिया है।-ऋग्वेद 10/81/3
8. हे दुष्टों को दंड देने वाले परमेश्वर, तुझ से अधिक उत्कृष्ट और तुझ से बड़ा संसार में कोई नहीं है, तेरी बराबरी का भी अन्य कोई नहीं है। -ऋग्वेद 4/30/1
9. एक सत्यस्वरूप परमेश्वर को बुद्धिमान् ज्ञानी लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। उसी को वे अग्नि, यम, मातरिश्वा, इंद्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण इत्यादि नामों से याद करते हैं।-ऋग्वेद 1/164/46
10. जो ईश्वर एक ही है, हे मनुष्य! तू उसी की स्तुति कर।-ऋग्वेद 5/51/16
11. ऋग्वेद के 10/121 के हिरण्यगर्भ सूक्त में प्रजापति के नाम से भगवान का स्मरण करते हुए परमेश्वर के लिये चार बार 'एक' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस सूक्त में एकेश्वरवाद का इतने स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन है कि न चाहते हुए भी मैक्समूलर महोदय लिखते हैं 'मैं एक और सूक्त ऋग्वेद 10/121 को जोड़ना चाहता हूँ, जिसमें एक ईश्वर का विचार इतनी प्रबलता और निश्चय के साथ प्रकट किया गया है कि हमें आर्यों के नैसर्गिक एकेश्वरवादी होने से इंकार करते हुए बहुत अधिक संकोच करना पड़ेगा।' ईसाई मत के पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के कारण मैक्समूलर महोदय ने एक नई तरकीब निकाली- एकेश्वरवाद को सिद्ध करने वाले मन्त्रों को नवीन सिद्ध करने का प्रयास किया।

यजुर्वेद

1. वह ईश्वर अचल है, एक है, मन से भी अधिक वेगवान है।-यजुर्वेद 40/4

अथर्ववेद

1. पृथ्वी आदि लोकों का धारण करने वाला ईश्वर हमें सुख देवे, जो जगत् का स्वामी है, एक ही है, नमस्कार करने योग्य है, बहुत सुख देने वाला है। -अथर्ववेद 2/2/2
2. आओ, सब मिलकर स्तुति वचनों से इस परमात्मा की पूजा करो, जो आकाश का स्वामी है, एक है, व्यापक है और हम मनुष्यों का अतिथि है। -अथर्ववेद 6/21/1
3. वह परमेश्वर एक है, एक है, एक ही है। उसके मुकाबले में कोई दूसरा, तीसरा, चौथा परमेश्वर नहीं है, पांचवां, छठा, सातवाँ नहीं है, आठवां, नौवां, दसवां नहीं है। वही एक परमेश्वर चेतन-अचेतन सबको देख रहा है। -अथर्ववेद 16/4/16-20

इस प्रकार वेदों के मंत्रों से यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर एक है।

शंका 6 : मैक्समूलर द्वारा प्रचारित (Henotheism) हीनोथीइज्म में क्या खामियां हैं?

समाधान : मैक्समूलर महोदय द्वारा प्रचारित हीनोथीइज्म के अनुसार प्रत्येक वैदिक कवि वा ऋषि जब जिस देवता की स्तुति करने लगता है, तब उसी

को सर्वोत्कृष्ट बताने और उसके अंदर सर्वोत्कृष्टता के सब गुणों को समाविष्ट करने का प्रयत्न करता है। वेद के अनेक ऐसे सूक्तों को पाना बहुत सुगम है, जिनमें प्रायः प्रत्येक देवता को सबसे ऊँचा और पूर्ण बताया गया है। ऋग्वेद के द्वितीय मंडल के प्रथम सूक्त में अग्नि को सब मनुष्यों का बुद्धिमान राजा, संसार का स्वामी और शासक, मनुष्यों का पिता, भाई, पुत्र और मित्र कहा गया है और दूसरे देवों की सब शक्तियां और नाम स्पष्टया उसकी मानी गई हैं। मैक्समूलर महोदय वेदों के अटल सिद्धांत को समझ नहीं पाये। वेद के ही अनुसार ईश्वर को इंद्र, विष्णु, ब्रह्मा, ब्राह्मणस्पति, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र, पूषा, द्रविणोदा, सवितादेव और भग कहा गया है और ये सब नाम प्रधानतया उस एक अग्नि पदवाच्य सर्वज्ञ परमेश्वर के हैं और उसी के गुणों को सूचित करते हैं। जैसे कि परिवार में एक ही व्यक्ति को अनेक संबंधों के कारण भिन्न भिन्न व्यक्ति पिता, चाचा, दादा, भाई, मामा आदि नामों से पुकारते हैं, वैसे ही एक परमात्मा के अनंत गुणों को सूचित करने के लिए अनेक नाम प्रयुक्त किये जाते हैं। जब ज्ञानस्वरूप के रूप में उसका स्मरण किया जाता है तो उसे अग्नि कहा जाता है, उसकी परमैश्वर्य सम्पन्नता दिखाने के लिए ब्रह्मा, ज्ञान का अधिपतितत्व दिखाने के लिए ब्राह्मणस्पति, सर्वोत्तमता और पापनिवारकता सूचित करने के लिए वरुण, सबके साथ प्रेम दर्शाने के लिए मित्र, न्यायकारिता के लिए अर्यमा, दुष्टों को रुलाने वाला दर्शाने के लिये रुद्र, ज्ञानादि देने के लिए द्रविणोदा, प्रकाशस्वरूप होने के लिए सविता आदि कहते हैं। अर्थात् यह सभी नाम एक ही ईश्वर के हैं, जोकि उनके विभिन्न गुणों को दर्शाते हैं।

वेदों में एक ईश्वर के विभिन्न नाम होने की साक्षी भी दी गयी है, जैसे-

1. परमेश्वर एक ही है। ज्ञानी लोग उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं, उसे इन्द्र कहते हैं, मित्र कहते हैं, वरुण कहते हैं, अग्नि कहते हैं, और वही दिव्य सुपर्ण और गरुत्मान् भी है, उसे ही वे यम और मातरिश्वन भी कहते हैं।

–ऋग्वेद 1/164/46

2. एक होते हुए भी उस सुपर्ण परमेश्वर को ज्ञानी कविजन बहुत नामों से कल्पित कर लेते हैं। –ऋग्वेद 10/114/5

3. यही भाव ऋग्वेद 3/26/7, ऋग्वेद 10/82/3, यजुर्वेद 32/1, अथर्ववेद 13/4 में भी आता है।

उदहारण के लिए जिस प्रकार बाईबिल में ईश्वर को God, Almighty, स्वतक आदि अनेक नामों से पुकारा गया है, उसी प्रकार वेदों में ईश्वर को भी विभिन्न नामों से पुकारा गया है। श्री अरविन्द घोष ने मैक्समूलर के

कथित हीनोथीइज्म की आलोचना अपने ग्रंथों में की है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि वैदिक ईश्वर एक है एवं वेद विशुद्ध एकेश्वरवाद का सन्देश देते हैं। वेदों में बहुदेवतावाद एक भ्रान्ति मात्र है और देव आदि शब्द कल्याणकारी शक्तियों से लेकर श्रेष्ठ मानव आदि के लिए प्रयोग हुआ है एवं उपासना के योग्य केवल एक ईश्वर है। ईश्वर के भी विभिन्न गुणों के कारण अनेक नाम हो सकते हैं एवं अनेक नाम देवों के भी हो सकते हैं।

7 वेद और पुनर्जन्म

कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा रही है कि वेद पुनर्जन्म के सिद्धांत का समर्थन नहीं करते हैं। भारतीय लेखक भी पश्चिम के लेखकों का अँधा अनुसरण करते दीखते हैं। इसका एक कारण तो वेदों के अर्थो को सूक्ष्मता से नहीं समझना है और दूसरा कारण मुख्य रूप से सभी पाश्चात्य विद्वान ईसाई मत के थे इसलिए पूर्वाग्रह से ग्रसित थे। ईसाई मत वेदों में वर्णित कर्म फल व्यवस्था और पुनर्जन्म को नहीं मानता, इसलिए वेदों में भी पुनर्जन्म का न होना मानता है।

स्वामी दयानंद अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ऋग्वेददिभाष्यभूमिका में पुनर्जन्म के वेदों से स्पष्ट प्रमाण देते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी पुनर्जन्म के अन्य प्रमाण दिए हैं।

1. हे सुखदायक परमेश्वर! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हमारे बीच में उत्तम नेत्र आदि सब इन्द्रियाँ स्थापित कीजिये तथा प्राण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, बल, पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये। –ऋग्वेद 8/1/23/1
2. हे सर्वशक्तिमान! आपके अनुग्रह से हमारे लिए बारंवार पृथ्वी प्राण को, प्रकाश चक्षु को और अंतरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। पुनर्जन्म में सोम अर्थात औषधियों का रस हमको उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा पुष्टि करनेवाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सब दुःख निवारण करनेवाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवे। –ऋग्वेद 8/1/23/2
3. हे सर्वज्ञ ईश्वर! जब जब हम जन्म लेवें, तब तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलतायुक्त जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हों। –यजुर्वेद 4/15
4. हे जगदीश्वर! आप की कृपा से पुनर्जन्म में मन आदि ग्यारह इन्द्रिय मुझको प्राप्त हों अर्थात् सर्वदा मनुष्य देह ही प्राप्त होता रहे। –अथर्ववेद 7/67/1
5. जो मनुष्य पुनर्जन्म में धर्माचरण करता है, उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है। –अथर्ववेद 5/1/1
6. जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्मधारण करना, पुनः शरीर को छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना, बारंवार होता है। –यजुर्वेद 16/47

7. तुम शरीरधारी रूप में उत्पन्न होकर अनेक योनियों में अनेक प्रकार के मुखों वाले भी हो जाते हो। –अथर्ववेद 10/8/27
8. यह जीवात्मा कभी किसी का पिता, कभी पुत्र, कभी बड़ा, कभी छोटा हो जाता है। –अथर्ववेद 10/8/28
9. मैंने इन्द्रियों के रक्षक अमर इस आत्मा का साक्षात्कार किया जो जन्म–मरण के मार्गों से विचरण करता रहता है। वह अपने अच्छे–बुरे कर्मों के अनुसार और प्रीतिपूर्वक अनेक योनियों में संसार के अंदर भ्रमण करता रहता है। –ऋग्वेद 1/164/3
10. हे जीवों! तुम जब शरीर को छोड़ो तब यह शरीर दाह के पीछे पृथ्वी, अग्नि आदि और जलों के बीच देह–धारण के कारण को प्राप्त हो और माताओं के उदरों में वास करके फिर शरीर को प्राप्त होता है। –यजुर्वेद 12/38
11. जीव माता के गर्भ में बार–बार प्रविष्ट होता है और अपने शुभ कर्मानुसार सत्यनिष्ठ विद्वानों के घर में जन्म लेता है। –अथर्ववेद 14/4/20

इसी प्रकार निरुक्त में यास्काचार्य ने पुनर्जन्म को माना है।

1. मैंने अनेक बार जन्म–मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारों गर्भाशयों का सेवन किया। –निरुक्त 13/19/1
2. अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता–पिता और सुहृदों को देखा। –निरुक्त 13/9/2
3. मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किये। –निरुक्त 13/9/7

दर्शन शास्त्र भी पुनर्जन्म का समर्थन करते हैं–

1. हर एक प्राणी की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि मैं सदैव सुखी बना रहूँ, मरूं नहीं। यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि मैं न होऊं। ऐसी इच्छा पुनर्जन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती। यह 'अभिनिवेश' क्लेश कहलाता है, जोकि कृमि तक को भी मरण का भय बराबर होता है। यह व्यवहार पुनर्जन्म की सिद्धि को जनाता है। –योगदर्शन 2/9
2. जो उत्पन्न अर्थात् शरीर को धारण करता है, वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़ के, पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार मर के पुनर्जन्म लेने को प्रेत्यभाव कहते हैं। –न्यायदर्शन 1/1/59

गीता में आता है कि जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्रों को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा पुराने व्यर्थ शरीरों को त्याग कर नवीन भौतिक शरीरों को धारण कर लेता है। –गीता 2/22

इस प्रकार रामायण, महाभारत, उपनिषद, पुराण आदि पुनर्जन्म के सिद्धांत का पुरजोर समर्थन करते हैं। पाश्चात्य विद्वान और उनकी सरणि पर चलने वाले भारतीय लेखकों को वेदों में पुनर्जन्म न मिलने का कारण उनकी वेदों के मूल अर्थों को समझने में अक्षमता है।

8 वेद और सोमरस

शंका 1 : क्या वेदों में सोमरस के रूप में शराब (alcohol) अथवा अन्य मादक पदार्थों का वर्णन है?

समाधान : पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों में सोम रस की तुलना एक जड़ी बूटी से की है, जिसको ग्रहण करने से नशा हो जाता है और वैदिक ऋषि सोम रस को ग्रहण कर नशे में झूम जाते थे। कुछ पश्चिमी लेखकों का मत है कि सोम सम्भवतः फफूंदी भी हो सकता है। मादक पदार्थों का प्रयोग करने वाले लोग सोमरस के नाम का सहारा लेकर नशा करना सही ठहराते हैं। इस भ्रान्ति का मूल कारण सोम शब्द के उचित अर्थ को न समझ पाना है।

शंका 2 : स्वामी दयानंद के अनुसार सोम का क्या अर्थ है?

समाधान : ऋषि दयानंद ने अपने वेद भाष्य में सोम शब्द का अर्थ प्रसंग अनुसार ईश्वर, राजा, सेनापति, विद्युत्, वैद्य, सभापति, प्राण, अध्यापक, उपदेशक इत्यादि किया है। कुछ स्थलों में वे सोम का अर्थ औषधि, औषधि रस और सोमलता नामक औषधि विशेष भी करते हैं, परन्तु सोम को सुरा या मादक वस्तु के रूप में कहीं ग्रहण नहीं किया है।

–आर्यो का आदि देश और उनकी सभ्यता, स्वामी विद्यानंद–पृष्ठ 221

स्वामी दयानंद लिखते हैं कि सोम का पान करने वाले की अंतरात्मा में विद्या का प्रकाश होता है अर्थात् जो मनुष्य दिन और रात पुरुषार्थ करते हैं वे नित्य सुखी होते हैं। –ऋग्वेद 5/34/3

शंका 3 : योगी अरविन्द का सोम विषय को लेकर क्या मत है?

समाधान : वेद के अध्यात्मिक व्याख्याकार श्री अरविन्द के अनुसार सोम आनंद के रस का और अमृत के रस का अधिपति है। ऋग्वेद 9/83 सूक्त की व्याख्या करते हुए उन्होंने इस सूक्त के सोम वर्णन को आलंकारिक बताया है। इस वर्णन में सोमरस को छानकर शुद्ध करने तथा इसे कलश में भरने के भौतिक कार्यों के साथ पूरा–पूरा रूपक बाँधा गया है।

शंका 4 : वैदिक मन्त्रों में सोम शब्द का प्रयोग किन अर्थों में हुआ है?

समाधान : वैदिक मन्त्रों में सोम शब्द के भिन्न–भिन्न मन्त्रों में भिन्न–भिन्न अर्थ निकलते हैं। जैसे– सोम को समस्त गुणयुक्त आरोग्यपन एवं बल देने वाला ईश्वर कहा गया है। – ऋग्वेद 1/91/22

सोम को लताओं का पति कहा है। – ऋग्वेद 9/114/2

सोम के लिए सुपर्ण विशेषण प्रयुक्त है। – ऋग्वेद 9/97/33

सोम की स्थिति द्युलोक में बताई है, यह भी कहा गया है कि वह 15 दिन तक बढ़ता रहता है और 15 दिन तक घटता रहता है। – ऋग्वेद 10/85/1

ऋग्वेद 10/85/2 और ऋग्वेद 10/85/4 में भी सोम की तुलना चंद्रमा से की गयी है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार चंद्रमा को सोम का पर्याय बताया गया है। तैतरीय उपनिषद् के अनुसार वास्तविक सोमपान तो प्रभु भक्ति है जिसके रस को पीकर प्रभुभक्त आनंदमय हो जाता है।

ऋग्वेद 6/47/1 और अथर्ववेद 18/1/48 में कहा गया है कि परब्रह्मा की भक्ति रूप रस सोम अत्यंत स्वादिष्ट है, तीव्र और आनंद से युक्त है, इस ब्रह्मा सोम का जिसने कर ग्रहण लिया है, उसे कोई पराजित नहीं कर सकता।

ऋग्वेद 8/92/6 इस परमात्मा से सम्बन्धित सोमरस का पान करके साधक की आत्मा अद्‌भुत ओज, पराक्रम आदि से युक्त हो जाती है, वह सांसारिक द्वंद्वों से ऊपर उठ जाता है।

शंका 5 : क्या वेद शराब या सुरा आदि के प्रयोग की अनुमति देते हैं?

1- वेद में मनुष्य को सात मर्यादायों का पालन करने का निर्देश दिया गया है– (ऋग्वेद 10/5/6) इन सात मर्यादाओं में से कोई एक का भी सेवन नहीं करता है, तो वह पापी हो जाता है, इनमें एक मर्यादा 'सुरापान न करना' भी है। (निरुक्त के नैगम कांड 6/5 के अनुसार चोरी, हमभिचार, ब्रह्म हत्या, गर्भपात, असत्य भाषण, बार बार बुरा कर्म करना और शराब पीना)

2- शराबी लोग मस्त होकर आपस में नग्न होकर झगड़ा करते और अण्ड बण्ड बकते हैं। – ऋग्वेद 8/2/12

3- सुरा और जुए से व्यक्ति अधर्म में प्रवृत्त होता है– ऋग्वेद 7/86/6

4- मांस, शराब और जुआ ये तीनों निंदनीय और वर्जित हैं।

–अथर्ववेद 6/70/1

5- शतपथ 5/1/2 के अनुसार सोम अमृत है तो सुरा विष है, इस पर विचार करना चाहिए।

जब वेदों की स्वयं की साक्षी शराब को ग्रहण करने की निंदा कर रही है तब कैसे वेद सोम रस के माध्यम से शराब पीने का सन्देश दे सकते हैं?

हमने सोमपान कर लिया है, हम अमृत हो गए हैं, हमने ज्योति को प्राप्त कर लिया है, विविध दिव्यताओं को हमने अधिगत कर लिया है, हे अमृतमय देव मनुष्य की शत्रुता या धूर्तता अब हमारा क्या कर लेगी। –ऋग्वेद 8/48/3

इस प्रकार वेदों के ही प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि सोम रस शराब आदि मादक पदार्थ नहीं हैं।

9 क्या वेदों में इतिहास है?

वेदों के विषय में एक शंका यह देखने को मिलती है कि क्या वेदों में इतिहास है? हिन्दू समाज के कुछ लोग वेदों में श्रीराम, कृष्ण, गणेश, विभिन्न देवी-देवता जैसे इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि से लेकर भौगोलिक पर्वत, राजाओं के राज्य आदि का वर्णन मानते हैं; जबकि विभिन्न मत-मतान्तर अपने अपने मत प्रवर्तक जैसे- जैन मत वाले महावीर, कबीर पंथी कबीर साहिब, इस्लामिक मत वाले मुहम्मद साहिब, ईसाई मत वाले ईसा मसीह आदि का वेदों में वर्णन मानते हैं। कुछ लेखक वेदों में गंगा, सरस्वती आदि नदियों का वर्णन होना मानते हैं।

शंका 1 : वेदों में इतिहास मानने में क्या कठिनाई है?

समाधान : वेद शाश्वत हैं। वेद परमात्मा की नित्य वाणी है। वेदों में सृष्टि रचना, वेद रचना आदि नित्य इतिहास ही हो सकता है, किन्तु किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास नहीं हो सकता। इस सृष्टि के आदि में चारों वेद ऋषियों के हृदय में प्रकाशित हुए। वेद ज्ञान का भी दूसरा नाम है। वेदों के माध्यम से ईश्वर द्वारा समस्त मानव जाति को ज्ञान प्रदान किया गया जिससे वह अपनी उत्पत्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। यह ज्ञान ईश्वर द्वारा जिस प्रकार से वर्तमान सृष्टि में प्रदान किया गया, उसी प्रकार पूर्व की सृष्टियों में भी दिया जाता रहा है और आगे आने वाली सृष्टियों में भी दिया जायेगा। जिस ज्ञान का उपदेश परमात्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को दिया गया, उसमें किसी भी प्रकार का इतिहास नहीं हो सकता, क्योंकि इतिहास किसी पुस्तक में उससे पूर्वकाल में उत्पन्न मनुष्यों का हुआ करता है। सृष्टि के आरम्भ में किसी प्रकार का अनित्य इतिहास वेदों में पहले से ही वर्णित होना संभव ही नहीं है। मनुष्य का ऐतिहासिक क्रम वेदों की उत्पत्ति के पश्चात ही आरम्भ होता है।

जो लोग वेदों में श्री राम, कृष्ण आदि का इतिहास मानते हैं, क्या वे यह भी मानेंगे कि हर सृष्टि में श्री राम को वनवास का कष्ट भोगना पड़ा? क्या हर सृष्टि में सीता हरण हुआ? क्या हर सृष्टि में कृष्ण को कारागार में जन्म लेना पड़ा? क्या हर सृष्टि में यादवकुल का नाश हुआ? नहीं, ऐसा कदापि संभव नहीं है। ईश्वर द्वारा सभी सांसारिक वस्तुओं के नाम वेद से लेकर रखे गए हैं, न कि इन नाम वाले व्यक्तियों या वस्तुओं के बाद वेदों की रचना हुई है। जैसे किसी पुस्तक में यदि इन पंक्तियों के लेखक का नाम आता है

तो वह इस लेखक के बाद की पुस्तक होगी। इस विषय में मनुस्मृति की साक्षी भी है।

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।-मनुस्मृति

अर्थात ब्रह्मा ने सब शरीरधारी जीवों के नाम तथा अन्य पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव नामों सहित वेद के अनुसार ही सृष्टि के प्रारम्भ में रखे और प्रसिद्ध किये और उनके निवासार्थ पृथक् पृथक् अधिष्ठान भी निर्मित किये।

शंका 2 : वेदों में इतिहास होने का विचार क्यों प्रचलित हुआ?

समाधान : वेदों की सर्वानुक्रमणियों तथा बृहद्देवता आदि ग्रंथों में वेदमंत्रों और सूक्तों के छन्दों, ऋषियों और देवताओं आदि का परिगणन किया गया है। इन ग्रंथों में अनेक वेदमंत्रों और सूक्तों के साथ अनेक कथा और कहानियों का भी सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। सायणाचार्य आदि भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में उन्हीं कहानियों को आधार बनाकर वेदों में इतिहास का भ्रम उम्पन्न कर दिया। जहाँ भी उन वेदमंत्रों में भारत के इतिहास में वर्णित किसी प्राचीन ऋषि और राजा के नाम का उल्लेख मिलता, भाष्यकर्ता उन्हीं नामों को आधार बनाकर कहानियों की रचना कर देते थे। जैसे वेदमंत्र उनके जीवन वृतान्त का वर्णन कर रहे हों। इन कहानियों को पढ़कर न केवल अनेक भ्रांतियां उत्पन्न होती हैं, अपितु उससे वेद के प्रति अनादर एवं अश्रद्धा की भावना उपजती है। विदेशी विद्वानों जैसे मैक्समूलर, ग्रिफ्फिथ आदि ने अपने पूर्वाग्रह और अज्ञान के कारण इन कहानियों का उपयोग वेदों के प्रति तुच्छता और सारहीनता की भावना का प्रचार करने में किया। वर्तमान के भारतीय लेखक भी उन्हीं का अनुसरण करते हुए वेदों के प्रति अनास्था का प्रदर्शन करने में पीछे नहीं रहते। यह वेदों का दोष नहीं है, अपितु उन भारतीय वेदभाष्यकारों और सर्वानुक्रमणियों के लेखकों का दोष है, जिनके अज्ञान से वेदों में इतिहास होने की मान्यता प्रचलित हुई।

शंका 3 : स्वामी दयानंद की इस सम्बन्ध में क्या मान्यता है?

समाधान : आधुनिक भारत में स्वामी दयानंद प्रथम चिंतक हैं जो वेदों में इतिहास को नहीं मानते। सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी लिखते हैं- 'इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्में पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं। किन्तु जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे, उस उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा या विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं है।'

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में भी स्वामी जी लिखते हैं- इससे यह सिद्ध हुआ

कि वेदों में सत्य अर्थों के वाचक शब्दों से सत्य विद्याओं का प्रकाश किया है, लौकिक इतिहास का नहीं। इससे जो सायणाचार्य आदि लोगों ने अपनी अपनी बनाई टीकाओं में वेदों में जहाँ-तहाँ इतिहास वर्णन किये हैं, वे सब मिथ्या हैं।

यजुर्वेद 3/62 का उदाहरण देकर स्वामी जी सिद्ध करते हैं कि वेदों की संज्ञाएँ यौगिक हैं, रूढ़ नहीं हैं। मंत्र में जमदग्नि, कश्यप आदि मुनियों और इन्द्रादि देवों का उल्लेख मिलता है। दूसरे भाष्यकर्ता इस मंत्र में इतिहास की खोज करते हैं। जबकि स्वामी दयानंद जमदग्नि से चक्षु, कश्यप से प्राण एवं देव से विद्वान् मनुष्यों का आशय प्रस्तुत करते हैं। स्वामीजी अर्थ करते हैं कि हमारे चक्षु और प्राण तिगुनी आयु वाले हों और देव विद्वान् लोग जैसे ब्रह्मचर्य आदि द्वारा दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं वह हमें भी प्राप्त हो। इसी क्रम से स्वामी दयानंद ने सभी वेद मन्त्रों का भाष्य किया है, जिसमें इतिहास का कोई वर्णन नहीं मिलता है। स्वामी दयानंद ने पुरातन ऋषि-महर्षियों की पद्धति को अपनाया तथा व्याकरण, निरुक्त एवं ब्राह्मण ग्रन्थादि के आधार पर यौगिक प्रक्रिया को अपनाकर अपने वेदभाष्य में यह स्पष्ट कर दिया कि वेदों में व्यक्तिवाचक लगने वाले शब्द वस्तुतः विशेषणवाची हैं तथा किन्हीं गुण-विशेषों का बोध कराते हैं।

शंका 4 : वेदों में इतिहास नहीं है, कुछ उदाहरणों के माध्यम से अपनी मान्यता को सिद्ध कीजिये।

समाधान : वेदों में इतिहास सम्बन्धी भ्रान्ति के चलते पाठकों यह यह भ्रम भी हो जाता है कि वेदों में अनेक मन्त्रों में अश्लीलता का वर्णन मिलता है। जैसे प्रजापति का अपनी दुहिता (बेटी) से सम्बन्ध, इसी प्रकार से इन्द्र अहिल्या की कथा, मित्र-वरुण एवं उर्वशी अप्सरा आदि की कथा का समाधान इसी पुस्तक में अन्य स्थान पर कर दिया गया है।

वेदों में इतिहास सम्बंधित कथाएँ मन्त्रों में नहीं मिलती, अपितु पुराण और दूसरे ग्रंथों में पायी जाती हैं। मंत्र में मिलने वाले एक आध शब्द को आधार बनाकर वेद के अनुक्रमणीकार और उनका अनुसरण करने वाले भाष्यकार कहानी बना लेते थे। कुछ उदाहरण देकर हम यह सिद्ध करेंगे कि वेदों में इतिहास मानना केवल भ्रान्ति है।

1- इन्द्र वृत्रासुर की कथा

मतवादी भाष्यकार ऋग्वेद 1/32/1-7 के मंत्रों में इन्द्र और वृत्रासुर की कथा बताते हैं जिसमें कहा गया है कि त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर ने देवों के राजा इन्द्र को युद्ध में निगल लिया। तब सब देवता भय से विष्णु के पास गए और

विष्णु ने उसे मारने का उपाय बताया कि मैं समुद्र के फेन में प्रविष्ट हो जाऊंगा। तुम लोग उस फेन को उठा कर वृत्रासुर को मारना, वह मर जायेगा।

स्वामी दयानंद इस मंत्र का उचित अर्थ करते हुए कहते हैं कि इन्द्र सूर्य का नाम है और वृत्रासुर मेघ को कहते हैं। आकाश में मेघ कभी सूर्य को निगल लेते हैं, कभी सूर्य अपनी किरणों से मेघों को हटा देता है। यह संग्राम तब तक चलता है जब तक मेघ वर्षा बनकर पृथ्वी पर बरस जाते हैं और फिर उस जल की नदियाँ बनकर सागर में जाकर मिल जाती हैं। स्वामी जी ने इंद्र तथा वृत्र, सूर्य तथा मेघ के दृष्टान्त से राजा के गुणों का उल्लेख किया है।

2 - दधिची की हड्डियों से वृत्र हनन की कथा

ऋग्वेद 1/84/13 के आधार पर एक कथा प्रसिद्ध है कि एक बार वृत्र नामक राक्षस ने सारी त्रिलोकी में उपद्रव मचा रखा था। देवता भी उससे तंग आ गए थे। तब सभी देवता विष्णु जी की शरण में गए। उन्होंने बताया कि दधीचि ऋषि की हड्डियों से बने वज्र से वृत्र को मारा जा सकता है। तब देवों की प्रार्थना पर दधीचि ने अपना शरीर त्याग दिया। इन्द्र ने उनकी हड्डियों से वज्र तैयार किया जिससे वृत्र मारा गया।

स्वामी दयानंद के अनुसार इस मंत्र का आधिदैविक अर्थ इस प्रकार है कि दधीचि कहते हैं सूर्य को और उसकी हड्डियाँ उसकी किरणे हैं और वृत्र का अर्थ हैं मेघ। जब सब जगत् में मेघ छा जाते हैं तब सूर्य अपनी किरणों से मेघो को छेद कर वर्षा कर देता है। इसका आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार है कि इन्द्र का अर्थ है आत्मा, दधिची का अर्थ है मन, दधिची की हड्डियाँ हैं उच्च मनोवृतियाँ और वृत्र का अर्थ है पाप वासना रूपी विचार। आत्मा अपने मन के उच्च विचारों से पाप वासना आदि कुविचारों का नाश कर देता है।

3- देवापि-शन्तनु की कहानी

ऋग्वेद 10/98/7 के आधार पर एक कथा प्रचलित है कि देवापि और शन्तनु दोनों भाई थे। शन्तनु छोटे थे पर राजा बन गए जिससे नाराज होकर देवापि वन जाकर तपस्या में लीन हो गए। राजा शन्तनु के राज्य में 12 वर्ष तक वर्षा नहीं हुई। उन्होंने ब्राह्मणों से पूछा तो बताया गया कि राज्य पर अधिकार देवापि का था जिस कारण वर्षा नहीं हुई। शन्तनु वन जाकर देवापि को बनाने की कोशिश करते हैं। वह मना कर देते हैं पर यज्ञ का पुरोहित बनना स्वीकार करते हैं, जिससे वर्षा हो सके। फिर शन्तनु ने देवापि को बुलाकर वृष्टि यज्ञ कराया, जिससे राज्य में पुष्कल वर्षा हुई।

निरुक्त 2/12 के आधार पर शन्तनु शब्द का अर्थ होता है जो राजा ऐसा प्रयत्न करता है कि उसके राज्य में सबको सुख प्राप्त हो। सब शरीर निरोग, प्रसन्न और सुखी रहें। उसी प्रकार प्रजा भी यह चाहती हो कि हमारा राजा भी स्वस्थ, सुखी, निरोगी होता हुआ युगों युगों तक जीवित रहे, उस राजा को शन्तनु कहते हैं और देवापि अर्थात उस गुण वाले व्यक्ति को जिसमें देवता समान गुण हों, उसे यज्ञ का पुरोहित बना कर वृष्टि यज्ञ करवाने से यज्ञ सफल होता है।

पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु इसी मंत्र का विशिष्ट अर्थ लिखते हैं। देवापि= विद्युत् जो मरुतों से उत्पन्न होता है। उसका भ्राता शन्तनु (शरीर को शान्ति देनेवाला) उदक-जल है। यहाँ पर वर्षा कराने में विद्युत् के महत्व को प्रकाशित किया गया है। इसे ऐतिहासिक कथा से जोड़ने से वेदों के सही अर्थ का लोप हो गया और एक निरर्थक कहानी प्रचलित हो गयी।

वेदों के सही अर्थ को न जानकर उससे इतिहास की कहानियां गढ़ लेने से वेदों की उच्च शिक्षा से हम वंचित हो जाते हैं। यही वेदों में इतिहास मानने का सबसे बड़ा दोष है।

शंका 5 : वेदों में सरस्वती, गंगा, यमुना आदि नदियों का वर्णन मिलता है। ये नदियां भूगोल का विषय हैं न कि इतिहास का विषय है। वेदों में नदियों के अस्तित्व को मानने में क्या कठिनाई है।

समाधान : वेद में सरस्वती, गंगा, यमुना, कृष्ण आदि शब्द आते हैं। पर ये ऐतिहासिक वस्तुओं या व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। वेद में इनके अर्थ कुछ और हैं। वेद के अर्थ समझने के लिए हमारे पास प्राचीन ऋषियों के प्रमाण है। निघण्टु में वाणी के 57 नाम हैं, उनमें से एक सरस्वती भी है। अर्थात् सरस्वती का अर्थ वेदवाणी है। ब्राह्मण ग्रंथ वेद व्याख्या के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। वहाँ सरस्वती के अनेक अर्थ बताए गए हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

1. वाक् सरस्वती।। वाणी सरस्वती है।-शतपथ 7/5/1/31

2. वाग् वै सरस्वती पावीरवी।। पावीरवी वाग् सरस्वती है।-शतपथ 7/3/39

3. जिह्वा सरस्वती।। जिह्वा को सरस्वती कहते हैं।-शतपथ 12/9/1/14

4. सरस्वती हि गौः।। वृषा पूषा। गौ सरस्वती है अर्थात् वाणी, रश्मि, पृथिवी, इन्द्रिय आदि। अमावस्या सरस्वती है। स्त्री, आदित्य आदि का नाम सरस्वती है।-शतपथ 2/5/11

5. अथ यत् अक्ष्योः कृष्णं तत् सारस्वतम्।। आंखों का काला अंश सरस्वती का रूप है।-शतपथ 12/9/1/12

6. अथ यत् स्फूर्जयन् वाचमिव वदन् दहति। अग्नि जब जलता हुआ

आवाज करता है, वह अग्नि का सारस्वत रूप है।-ऐतरेय 3/4

7. सरस्वती पुष्टिः, पुष्टिपत्नी। सरस्वती पुष्टि है और पुष्टि को बढ़ाने वाली है।-तैतरेय 2/5/7/4

8. एषां वै अपां पृष्ठं यत् सरस्वती। जल का पृष्ठ सरस्वती है।-तैतरेय 1/7/5/5

9. ऋक्सामे वै सारस्वतौ उत्सौ। ऋक् और साम सरस्वती के स्रोत हैं।

10.सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपम्। सरस्वती वज्र का दूसरा रूप है।-कौ 12/2

ऋग्वेद के 6/61 सूक्त का देवता सरस्वती है। स्वामी दयानन्द ने यहाँ सरस्वती के अर्थ विदुषी, वेगवती नदी, विद्यायुक्त स्त्री, विज्ञानयुक्त वाणी, विज्ञानयुक्ता भार्या आदि किये हैं। सरस्वती शब्द को एक विशेष नदी मानकर भाष्यकार किस प्रकार भ्रम में पड़े हैं, जैसे एक झूठ को सिद्ध करने के लिए हजार झूठ बोले जा रहे हो, इसका एक उदाहरण ऋग्वेद 7/95/2 के इस मंत्र से समझा जा सकता है-

एका चेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्यः आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय।।

सायणाचार्य ने यहाँ सरस्वती को एक विशेष नदी माना और कल्पना के घोड़े पर सवार हो गए। वे इसका अर्थ करते हैं- (नदीनां शुचिः) नदियों में शुद्ध (गिरिभ्यः आसमुद्रात् यती) पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई (एका सरस्वती) एक सरस्वती नदी ने (अचेतत्) नाहुष की प्रार्थना जान ली और (भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती) प्राणियों को बहुत से धर्म सिखाती हुई (नाहुषाय घृतं पयो दुदुहे) नाहुष राजा के एक हजार वर्ष के यज्ञ के लिए पर्याप्त घी दूध दिया।

यहाँ नहुष के अर्थ पर विचार न करने के कारण इस इतिहास की कल्पना करनी पड़ी। निघण्टु 2/3 के अनुसार मनुष्य के 25 पर्याय हैं उनमें एक नहुष भी है। घृतं, पयः भी वेद विद्या है।-शतपथ ब्राह्मण 11/5/7/5

आर्ष वेदार्थ शैली के अनुसार इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है-

(एका नदी शुचिः गिरिभ्यः आसमुद्रात् यती) जैसे एक नदी गिरियों से शुद्ध पवित्र जल वाली समुद्र तक जाती हुई जानी जाती है। उसी प्रकार (सरस्वती एका) एक अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ उत्तम ज्ञानवाली प्रभु वाणी (गिरिभ्यः) ज्ञानोपदेष्टा गुरुओं से (आ समुद्रात्) जनसमूहरूप सागर तक प्राप्त होती हुई जानी जाती है। अर्थात् उससे लोग ज्ञान प्राप्त करें। वह (भुवनस्य भूरे चेतन्ती) संसार और जन्तु जगत् को प्रभूत ऐश्वर्य का ज्ञान कराती हुई (नाहुषाय) मनुष्य मात्र को (घृतं पयः दुदुहे) प्रकाशमय, पान करने योग्य रस के तुल्य ज्ञान रस को बढ़ाती है।

प्रकरणवश एक मंत्र पर और विचार करना उचित होगा, जिसमें गंगा आदि

दस नदियों के नाम बताए गए हैं।

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया।।

–ऋग्वेद 10/75/5

स्वामी दयानन्द के अनुसार इडा, पिंगला, सुषुम्णा और कूर्मनाड़ी आदि की गंगा आदि संज्ञा है। योग में धारणा आदि की सिद्धि के लिए और चित्त को स्थिर करने के लिए इनकी उपयोगिता स्वीकार की गई है। इन नामों से परमेश्वर का भी ग्रहण होता है। उसका ध्यान दु:खों का नाशक और मुक्ति को देने वाला होता है। इस मंत्र के प्रकरण में पूर्व से भी ईश्वर की अनुवृत्ति है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि वेद में सरस्वती आदि का उल्लेख धरती के किसी स्थान विशेष पर बहने वाली नदी के रूप में नहीं आया है। न ही वेद में सरस्वती से संबंधित किन्हीं व्यक्तियों का इतिहास है। सरस्वती नदी की ऐतिहासिकता को वेद से प्रमाणित करने का प्रयास वेद का अवमूल्यन करना है।

यही नियम वेद में वर्णित विभिन्न नामों, विभिन्न स्थलों, नदियां आदि पर भी लागू होता है, जिससे कुछ लोग वेदों में इतिहास होने की कल्पना कर लेते हैं।

10 क्या ऋग्वेद का दशम मंडल बाद में मिलाया गया है?

पश्चिमी लेखकों का यह मत है कि ऋग्वेद का दशम मंडल अर्वाचीन है एवं उसे बाद में मिलाया गया है। उनकी इस मान्यता का आधार दसवें मंडल में भाषा की भिन्नता है।

शंका 1 : पश्चिमी लेखकों की मान्यता, कि ऋग्वेद का दसवां मंडल बाद में मिलाया गया है, का आधार क्या है?

समाधान : पश्चिमी लेखक मक्डोनेल द्वारा अपनी पुस्तक में अपनी इस मान्यता के समर्थन में कुछ युक्तियाँ दी गई हैं। जैसे

1– ऋग्वेद के दशम मंडल की भाषा भिन्न है।

2– मन्यु और श्रद्धा जैसे अमूर्त विचारों की अधिकता है।

3– विश्वेदेवा की प्रधानता हो गई है।

4– उषा देवी का मान कम होता दीखता है।

5– 20-26 सूक्तों का कर्ता अग्निमीले से आरम्भ करता है, अत पहिले 9 मंडल पुस्तक रूप में भी आ चुके थे।

6– क्योंकि यह सोम अध्याय के पश्चात रखी गई है।

7– क्योंकि इसके सूक्तों की संख्या प्रथम मंडल के बराबर है।

8– यहाँ तक कि दशम मंडल के सूक्त अन्य मंडलों में की गई मिलावट से अधिक प्राचीन प्रतीत होते हैं।

अनेक भारतीय विद्वान भी इस विचार को सही मानते हैं।

ऋग्वेद का दशम मंडल स्पष्टतया पीछे की मिलावट है जिसमें अथर्ववेद जैसी जादू-टोने की बातें पाई जाती हैं।

दशम मंडल पहले 9 मंडलों की अपेक्षा पीछे बना, यह बात भाषा की साक्षी से पूर्णतया निश्चित है।

ऋग्वेद का दशम मंडल अर्वाचीन माना जाता है।

ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 90 मंत्र 11,12 का पुरुष सूक्त अपनी भाषा और भावना से अर्वाचीन प्रतीत होता है।

दशम मंडल में लोक, मोघ, विसर्ग, गुप् इत्यादि अनेक शब्द आते हैं जो सिवाय प्रक्षिप्त भागों और बालखिल्य सूक्तों के ऋग्वेद के अन्य भागों में नहीं पाये जाते हैं।

शंका 2 : इस मान्यता को आप सही मानते हैं अथवा गलत मानते हैं?

समाधान : पश्चिमी लेखकों की मान्यता का विश्लेषण करते समय हमने यह पाया कि वास्तव में इस मान्यता का समाधान शुष्क एवं दुरूह है, क्योंकि यह भाषाविदों का विषय है। अधिक जानकारी के लिए शोध में रूचि रखने वाले विद्वान पंडित भगवत दत्त रिसर्च स्कॉलर, पंडित शिवपूजन सिंह कुशवाहा, पंडित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड द्वारा कृत लेख एवं पुस्तकें देख सकते हैं।

इस लेख में हम केवल लोक, मोघ, विसर्ग आदि शब्दों का विश्लेषण करेंगे।

'लोक' शब्द पर विचार

लोक शब्द ऋग्वेद के दशाम मंडल के अतिरिक्त ऋग्वेद 1/93/6, 2/30/6, 3/2/9, 4/17/17, 6/23/7, 6/47/8, 6/73/2, 7/20/2, 7/33/5, 7/60/9, 7/84/2, 7/99/4, 8/100/12, 9/92/6 आदि मन्त्रों में आया है फिर यह अयथार्थ एवं तथ्य विरुद्ध बात कैसे लिख दी।

'मोघं' शब्द पर विचार

मोघं का प्रयोग ऋग्वेद के दशाम मंडल के अतिरिक्त ऋग्वेद के सप्तम मंडल में दो मन्त्रों 7/104/14, 7/104/15 में मिलता है, फिर यह अयथार्थ एवं तथ्य विरुद्ध बात कैसे लिख दी?

'विसर्ग' शब्द पर विचार

विसर्ग का प्रयोग ऋग्वेद के दशाम मंडल के अतिरिक्त ऋग्वेद के सप्तम मंडल में 103 सूक्त में मिलता है, फिर यह अयथार्थ एवं तथ्य विरुद्ध बात कैसे लिख दी?

पंडित सत्यव्रत जी सामश्रमी त्रयीपरिचय ग्रन्थ में भाषा भेद की मान्यता का स्पष्ट रूप से निराकरण करते हुए लिखते हैं कि हमारे सुनने में तो दशाम मण्डल और दूसरे मंडलों की भाषा एक ही तरह की है और हमारी बुद्धि में उनका तात्पर्य भी एक ही जैसा (अन्य मंडलों के सदृश) है। हम नहीं जानते कि किनकी बुद्धि मलिन है और कौन हठी है?

इस प्रकार अनेक तर्कों और प्रमाणों द्वारा ऋग्वेद को अर्वाचीन बताने का जो प्रयास किया जा रहा है वह असत्य सिद्ध हो जाता है।

शंका 3 : पश्चिमी लेखक वेदों में बाद में मिलावट की कल्पना से क्या सिद्ध करना चाहते हैं?

समाधान : पश्चिमी लेखकों की वेदों पर मान्यता का आधार ईसाई मत की मान्यताओं के पूर्वाग्रह से प्रभावित रहा है। इन्हीं मान्यताओं के चलते वेदों

में बहुदेवतावाद, वेदों में इतिहास, वेदों में जादू टोना, विकासवाद आदि को बलात् सिद्ध करने का प्रयास किया गया। वेदों को जंगली लोगों की निकृष्ट मान्यता एवं बाइबिल को सभ्य लोगों की उच्च मान्यता सिद्ध करने का असफल प्रयास इसी प्रदूषित सोच का परिणाम था। जब उन्होंने ऋग्वेद के दसवें मंडल में हिरण्यगर्भ सूक्त में प्रतिपादित एकेश्वरवाद, नासदीय सूक्त आदि में ईश्वर द्वारा सृष्टि उत्पत्ति एवं पालन, श्रद्धा सूक्त, मन्यु सूक्तादि में आध्यात्मिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक विषयों को देखा तो उन्होंने बच निकलने का रास्ता सोचा और इस मंडल को पीछे का बनाया हुआ प्रचारित कर दिया। भाषा-भेद तो एक बहाना भर था। उदाहरण के लिए हम मैक्समूलर की मान्यता का विश्लेषण करते हैं।

हिरण्यगर्भ सूक्त को मैक्समूलर महोदय ने यूरोपियन व्याख्याकारों द्वारा नवीन होना बताया है। इस सूक्त के अंतिम मंत्र 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव' पर मैक्समूलर महोदय लिखते हैं कि मेरे विचार में यह अंतिम मंत्र तो अत्यंत संदिग्ध है।

सत्य यह है कि ऋग्वेद के इस सूक्त में एकेश्वरवाद अर्थात 'ईश्वर एक है' के मन्त्रों को देखकर मैक्समूलर ईसाईमत जन्य पक्षपात के शिकार हुए। पर वेदों के अनेक मंडलों में 'ईश्वर के एक' होने के पर्याप्त प्रमाण उपस्थित हैं।

शंका 4 : क्या वेदों में मिलावट की जा सकती है?

समाधान : वेद नित्य ईश्वर का नित्य ज्ञान है। इसलिए जिस रूप में वेद इस कल्प में आज उपलब्ध होते हैं, उसी रूप में वे पिछले कल्पों में भी अनादिकाल से ईश्वर द्वारा प्रकट किये जाते रहे हैं तथा भविष्य में आने वाले अनंत कालों में भी वे इसी रूप में प्रकट किये जाते रहेंगे। स्वामी दयानंद इस विषय को स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि 'जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर और सम्बन्ध वेदों में है, इसी प्रकार से पूर्व कल्प में थे और आगे भी होंगे, क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है सो नित्य एक ही रस बनी रहती है। उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता। सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं, इनमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्तमान है, इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है। क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है। उसकी वृद्धि, क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती।'

इस तथ्य को पाणिनि ने अष्टाध्यायी में भी नित्य माना है। 'वेद में स्वर तथा वर्णानुपूर्वी भी नित्य होती है।' निरुक्त में यास्क भी वेदमंत्रों की शब्द रचना

और उनकी आनुपूर्वी को नियत मानते हैं।

वेदों की नित्यता के पश्चात् वेदों की शुद्धता की रक्षा का प्रबंध भी इतना वैज्ञानिक है कि उसमें प्रक्षेप करना असंभव है। क्रम के अतिरिक्त जटा, माला, शिक्षा, लेखा, ध्वजा, दण्ड, रथ, घन इन आठ प्रकारों से वेद मन्त्रों के उच्चारण का विधान किया गया है। इस पाठक्रम का विधान ऐतरेय आरण्यक, प्रतिशाख्यादि में भी उल्लेख है। वेदों के शुद्ध पाठ को सुरक्षित रखने के लिए इसी प्रकार से अनुक्रमणियां भी पाई जाती हैं।

विदेशी से लेकर स्वदेशी विद्वान वेदों की शुद्धता की रक्षा पर मोहित होकर अपने विचार लिखते हैं-

मैक्समूलर महोदय - Ancient Sanskrit Literature Page 117 में लिखते हैं- ऋग्वेद की अनुक्रमणी से हम उसके सूक्तों और पदों की पड़ताल करके निर्भीकता से कह सकते हैं कि अब भी ऋग्वेद के मन्त्रों, शब्दों और पदों की वही संख्या है, जो कात्यायन के समय थी।

वेदों के पाठ हमारे पास इतनी शुद्धता से पहुंचाये गए हैं कि कठिनाई से कोई पाठभेद अथवा स्वरभेद तक सम्पूर्ण ऋग्वेद में मिल सके। Origin of Relgion Page 131

मक्डोनेल महोदय- A History of Sanskrit Literature Page 50 में लिखते हैं- आर्यों ने प्राचीन काल से असाधारण सावधानता का वैदिक पाठ की शुद्धता रखने और उसे परिवर्तन अथवा नाश से बचाने के लिए उपयोग किया। यह इतनी शुद्धता से सुरक्षित रखा गया है जो साहित्यिक इतिहास में अनुपम है।

इस प्रकार पश्चिमी विद्वान वेदों में बाद के काल में हुई मिलावट की कल्पना का स्वयं खंडन कर अपनी परिकल्पना को स्वयं गलत सिद्ध कर रहे हैं।

वैदिक विचारधारा को स्वामी दयानंद की अभिनव देन

वेदों को अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, उदासीनता और घोर अपेक्षा के अन्धकारमय गर्त से निकालकर सर्वसाधारण तक सुलभ करवाने का श्रेय आधुनिक भारत के महान वेदोद्धारक, प्रचारक, चिंतक, सत्य अन्वेषी, महान पुरुषार्थी स्वामी दयानंद को जाता है। स्वामी दयानंद की वैदिक विचारधारा को प्रथम देन जनमानस के लिए लुप्त हो चुके वेदों को सुलभ करवाने का भगीरथ प्रयास करना है। मध्य काल के अंधकारमय युग एवं विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचार के कारण वेद केवल कुछ परिवारों तक सीमित हो गए थे। स्वामी दयानंद ने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि चार वेद संहिता ही वेद हैं। अन्य वेदों की शाखाएं, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन आदि ग्रन्थ आर्ष ग्रन्थ हैं, जो मनुष्य कृत हैं एवं वेदों के मूल अर्थ को जानने में सहायक हैं।

स्वामी दयानंद की दूसरी अभिनव देन लुप्तप्राय हो चुकी संस्कृत भाषा में उपलब्ध वेदों को जन साधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से उनका आर्य (हिंदी) भाषा में भाष्य करना था। इस महान प्रयास से सामान्य ज्ञान वाला व्यक्ति भी जो चिर काल से भाषा भेद के चलते वेदों के अनुपम ज्ञान से वंचित था, वेदों की पुष्कल सामग्री का लाभ उठाने लायक हो गया।

स्वामी दयानंद की तीसरी अभिनव देन वेदों को अव्यावहारिक कर्मकांड ग्रन्थ की सीमित परिभाषा से निकाल कर उसे वैज्ञानिक, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक विद्याओं के ग्रन्थ के रूप में स्थापित करना था। स्वामी जी ने इस प्रकार से वेद आधारित यज्ञों को पशु बलि एवं हिंसा आदि से मुक्त कर न केवल वेदों को निर्दोष सिद्ध किया अपितु निरीह पशुओं पर भी दया कर अपना नाम दयानंद सिद्ध किया।

स्वामी जी की वेदों को चौथी अभिनव देन यह सिद्ध करना था कि वेद व्यक्ति और परिवार के व्यावहारिक जीवन को चलाने के लिए आवश्यक ज्ञान देने के साथ साथ बड़े बड़े राष्ट्रों और विश्वराष्ट्र की सरकार चलाने के लिए आवश्यक ज्ञान का उपदेश करते हैं। वेद में शिक्षा शास्त्र, समाज शास्त्र, गृहस्थ शास्त्र, राजनीति शास्त्र, आयुर्वेद शास्त्र तथा अनेक प्रकार से भौतिक ज्ञान का उपदेश दिया गया है। स्वामी जी के इस विशिष्ट प्रयास से वेदों के प्रति संसार का दृष्टिकोण एक वीभत्स कर्मकांड की पुस्तक से बदल कर उससे कहीं महान आध्यात्मिक ग्रन्थ के रूप में स्थापित हुआ। स्वामी दयानंद की पांचवीं अभिनव

देन वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करना था। स्वामी जी वेद मन्त्रों के अनुपम भाष्य से वेदों को व्यवहार अनुकूल, युक्ति संगत एवं तर्कपूर्ण सिद्ध किया। स्वामी जी के इस प्रयास से वेदों के भाष्य की गलत परिभाषा पढ़कर नास्तिकता के भंवर में फंसे लोगों में आस्तिकता का प्रचार हुआ। स्वामी जी द्वारा दिए गए तर्कों और उपाय का अनुसरण करने पर ही व्यक्ति वेदों के सत्य अर्थ तक पहुंच कर उनका लाभ उठा सकता है।

स्वामी जी की छटी अभिनव देन यह सिद्ध करना था कि वेद कोई इतिहास की पुस्तक नहीं है, जिसमें राजाओं की कहानियां, राज्य आदि का वर्णन है। इस प्रयास से वेदों को गपोड़े आदि कहने वाले लोगों को स्वामी जी ने प्रत्युत्तर देकर सत्य का प्रकाश किया।

स्वामी दयानंद द्वारा वेदों का आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक विधाओं से भाष्य कर वेदों को सत्य विद्या एवं ज्ञान-विज्ञान के महान ग्रन्थ के रूप स्थापित करना मनुष्य समाज पर सबसे महान उपकार है। इस उपकार के लिए हम सब उनके कृतज्ञ एवं आभारी हैं।

-डॉ॰ विवेक आर्य

सहायक ग्रंथ सूची

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका- स्वामी दयानंद
ऋग्वेद भाष्य- स्वामी दयानंद
यजुर्वेद भाष्य- स्वामी दयानंद
अथर्ववेद भाष्य प्रकाशक- विश्वनाथ वेदालंकार, रामलाल कपूर ट्रस्ट
अथर्ववेद भाष्य- क्षेम करण त्रिवेदी
शतपथ ब्राह्मण, ताण्ड्य महाब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण
निरुक्त, निघंटु
कठोपनिषद्
मनुस्मृति
अष्टाध्यायी
शब्दकल्पद्रुम
रामायण, महाभारत
बृहदारण्यक उपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद
न्याय दर्शन
भागवत पुराण
भविष्य पुराण
विष्णु पुराण
ब्रह्म पुराण
सत्यार्थ प्रकाश- स्वामी दयानंद
वेदों का यथार्थ स्वरुप- पंडित धर्म देव विद्या मार्तण्ड
वेद और उसकी वैज्ञानिकता भारतीय मनीषा के परिप्रेक्ष्य में- आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति
आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता- स्वामी विद्यानंद सरस्वती
आर्ष ज्योति- पंडित रामनाथ वेदालंकार
सत्यार्थ भास्कर भाग 1, 2 - स्वामी विद्यानन्द सरस्वती
वेद और वेदार्थ- डॉ. ज्वलंतकुमार शास्त्री
आर्य समाज का इतिहास- भाग 1-7 : सत्यकेतु विद्यालंकार
वर्ण व्यवस्था का वैदिक रूप- लाला ज्ञान चंद आर्य
वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था- धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री

वैदिक पशु यज्ञ मीमांसा- प्रोफेसर विश्वनाथ विद्यालंकार
आर्यों का आदि देश और उनकी सभ्यता - स्वामी विद्यानंद
स्वाध्याय संदोह - स्वामी वेदानन्द तीर्थ
वर्णाश्रम धर्म-श्री पंडित जनमेजय वेदालंकार
वर्ण व्यवस्था- श्रोत्रिय शंकरलाल
मानव समाज व्यवस्था -पंडित देवप्रकाश
जातिभेद (Castism)- पंडित गंगा प्रसाद चीफ जज
जातिनिर्णय -पंडित शिव शंकर शर्मा काव्यतीर्थ
वैदिक नारी- पंडित रामनाथ वेदालंकार
वेदों में स्त्री अधिकार- पंडित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
वेदों में इतिहास नहीं- वेदरत्न डॉ. सत्यव्रत राजेश
अथर्ववेदीय मन्त्रविद्या- प्रियरत्न आर्ष
वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप-स्वामी सत्यप्रकाश
वेद रहस्य- योगी अरविन्द
ऐतरेयालोचन -पंडित सत्यव्रत सामश्रमी
आर्याभिविनय-स्वामी दयानंद
स्वमंतव्यामंतव्यप्रकाश-स्वामी दयानंद
पूना प्रवचन, उपदेश मंजरी : स्वामी दयानंद
व्यवहारभानु- स्वामी दयानंद
पवित्र गाय का मिथक/The myth of the Holy Cow - D.N.Jha
Vedas- The myth and reality - Pt Dharma Deva Vidya Martand
The Vedic Age
The Rig Veda –Ralph T H Griffith 1896
The Brahma Samaj and Arya samaj in the bearing of Christianity:- A study of Indian Theism by Frank Lillingston (1901)
On the Religion and Philosophy of the Hindus by Henry Thomas Colebrooke (1858)
History on Ancient Sanskrit Literature by Maxmuller
Vedic hymns by Maxmuller
Ancient Sanskrit Literature by Maxmuller
Who were Shudras? – Dr B R Ambedkar
Women in Vedas by Shakuntala Rao
Dayanand Bankim Tilak by Shri Arvind
Chips from a German Workshop- Max Muller

❁